REGD. NO. A

श्रीधन्वन्तरयेनमः

वैद्य सम्मेलन-पत्रिका

निखिल भारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलनकी

त्रैमासिक मुख पत्रिका ।

प्रथम वर्ष } कार्तिक—पौष १९७१ वै० { प्रथम संख्या

विषय सूची ।

किशोरीदत्त शास्त्री
सूर्यप्रसाद वाजपेयी } सम्पादक
जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

शंकर दाजी शास्त्री पदे

वैद्यसम्मेलनपत्रिकाके नियम ।

(१) वैद्यसम्मेलनके उद्देश्योंको सिद्ध करनेके लिये और उसकी स्थायीसमिति-आयुर्वेदमहामण्डल और आयुर्वेदविद्यापीठकी कार्य-वाहियोंका प्रचार करते रहनेके लिये यह पत्रिका अभी तीन तीन महीनेमें प्रकाशित हुआ करेगी। (२) इसका वार्षिक मूल्य सर्व-साधारणसे दो रुपये और प्रत्येक फुटकल अङ्कका दाम ॥) है। किन्तु वैद्यसम्मेलनके सब प्रकारके सभासदोंको यह मुफ्त मिलेगी। पिछले फुटकल अङ्क या अङ्कोंका दाम सभासदोंसे आधा लिया जायगा। (३) नमूनेके लिये इसकी एक कापी मुफ्त भेजी जायगी; इसके बाद ग्राहक अथवा सभासद न होनेसे पत्रिका नहीं भेजी जायगी। (४) इस वर्तमान स्वरूपमें इसकी नियमित पृष्ठ संख्या ४० रहेगी किन्तु आवश्यकता होनेसे कभी कभी पृष्ठ संख्या कम और अधिक भी हो सकेगी। (५) पत्रिकाके सम्बन्धके पत्र, सम्पादकके सम्बन्धके लेख, चिट्ठी, बदलेके समाचारपत्र, विज्ञापन, समालो-चनाकी पुस्तकें, मनीआर्डर आदि सब मन्त्री, आयुर्वेदमहामण्डल दारागञ्ज-प्रयागके पतेसे भेजने चाहिये!

विज्ञापन ।

(६) इस पत्रिकामें अश्लील विज्ञापन अथवा जिन्हें आयु-र्वेदमहामण्डल या आयुर्वेदविद्यापीठ अस्वीकृत करे वे विज्ञापन नहीं प्रकाशित किये जायँगे। (७) विज्ञापनकी छपाई प्रत्येक बार प्रत्येक पृष्ठकी ५) आधेकी ढाई रुपये और चौथाईकी डेढ़ रुपये होगी। (८) पुस्तकों, सामयिकपत्रों और अप्रस्तुत भेषज वस्तुओं (जङ्गलकी जड़ी-बूटी, औषधोपयोगी खनिज द्रव्यादि) की छपाई प्रतिवार प्रति पृष्ठ ३) आधेकी डेढ़ रुपये और चौथाई पृष्ठकी १) ली जावेगी। (९) जो सज्जन साल भरकी छपाई एक दम भेज देंगे, उनसे फी रुपये डेढ़ आने कम लिये जावेंगे। अग्रिम मूल्य पाये बिना किसीका विज्ञापन छापा नहीं जायगा। (१०) वैद्यों, उपदेशकों और अध्यापकोंकी आवश्यकता, वैद्यक सम्बन्धी सभाओंकी सूचना आदिके विज्ञापन एक बार मुफ्त छाप दिये जायँगे। अधिक बार छपानेके लिये प्रति बार प्रति पृष्ठका २), आधे पृष्ठका १) और चौथाई पृष्ठका ॥।) लिया जायगा। (११) उक्त नियमोंके विरुद्ध आयुर्वेदमहामण्डलकी आज्ञा बिना कोई कार्यवाही नहीं हो सकेगी; इसलिये कोई सज्जन व्यर्थमें पत्र व्यवहार न करें।

पता—मन्त्री आयुर्वेदमहामण्डल, दारागञ्ज-प्रयाग।

॥ श्रीधन्वन्तरयेनमः ॥

वैद्य सम्मेलन—पत्रिका

निखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनकी स्थायीसमिति आयुर्वेद-महामण्डल और आयुर्वेदविद्यापीठकी ओरसे प्रकाशित ।

प्रथम वर्ष } कार्तिक—पौष सं० १९७१ वै० { प्रथम संख्या

अवतरणिका ।

रागादि रोगान् सततानुषक्तानशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहाऽरतिदान् जघान योऽपूर्ववैद्याय नमोस्तु तस्मै ॥१॥
पथ्यापद्माक्षमालाऽमृतकलशशिखा बालबर्हाङ्कुरेषु ।
बिभ्राणः प्राणिमात्रं परमकरुणया नीरुजं कर्तुकामा ।
या सिन्धोराविराशीदखिलसुरवरैर्वन्दिता वैद्यविद्या-
द्वीपः पाथादायपादिह भुवि भगवान् वेद धन्वन्तरिस्सः ॥ २ ॥
ब्रह्मदक्षाश्विदेवेश भरद्वाजपुनर्वसु ।
हुताशवेश चरक प्रभृतिभ्योनमः ॥ ३ ॥

आंख, कान, नाक, हाथ पांव सभी अङ्ग दुरुस्त हैं ; परन्तु एक मुख न होनेसे हृदयकी बात खोल कर नहीं कही जा सकती, अपनी प्रार्थना किसीको नहीं सुनायी

जा सकती और दूसरेकी सुनी हुई बातका समाधान नहीं किया जा सकता। अपने हृदयकी बातें जो खोल कर उचित शब्दोंमें कहना ही आकर्षिणी विद्या है, मोहिनी मन्त्र है। इसके न रहनेसे सभी अङ्ग बेकार हैं। इस प्रकार मुखविलास ही संसारमें जन्म-लेनेका सार है। किसी कविने ठीक कहा है कि यह मुख ही चाहे तो परमपद तककी प्राप्ति करा दे और चाहे तो बन्धन करा दे, रसातलको पहुँचा दे। वैद्यसम्मेलनके अब तक अपना मुख नहीं था। जन्मसे ही वह अपने सहायकों, अपने पोषकों और अपने हितैषियों-के मुखसे काम लेता आया है। सभाओं और संस्थाओंके मुख "मुखपत्रिका" हुआ करती हैं। मुखपत्रिकासे हम जिह्वाका भी अर्थ ग्रहण कर सकते हैं। यदि सभापतिको सभाओंका हृदय, अधिक रायको बुद्धि, मन्त्रीको मस्तिष्क और अन्य सब कार्यकर्ता-ओंको भिन्न भिन्न अङ्ग मानें तो मुखपत्रिकाको अवश्य ही मुख अथवा जिह्वा मानना पड़ेगा। वह जिह्वा अब तक वैद्यसम्मेलनकी स्पष्ट नहीं थी, लड़खड़ाती हुई और तोतली था; इसीलिये उसे अपना अभि-प्राय व्यक्त करनेके लिये अपने पोषकों और आश्रयदाताओंकी शरण जाना पड़ता था। स्वर्गवासी शङ्कर दाजी शास्त्री पदे महोदयने जिस समय वैद्यसम्मेलनको जन्म दिया, उस समय उनके निजके ही तीन पत्र थे। मराठीमें "आर्यभिषक" हिन्दीमें "सद्वैद्यकौस्तुभ" और मराठी-हिन्दी और गुजराती तीनों भाषाओंका समन्वय त्रैभाषिक-पत्र "भारतधर्म" था। तीनों उसके अभिप्रायको पूर्णरूपसे सर्व-साधारणको समझाया करते थे। इनके सिवाय "वैद्यकल्पतरु" श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार भारतमित्र, इन्दुप्रकाश, गुजराती, प्रभृति भी सदासे उसकी बातोंका विकास करते आ रहे हैं। वैद्यसम्मेलनके दूसरे उठानके समय यद्यपि हिन्दी आजके समान सात आठ वैद्यक-पत्रोंका गौरव नहीं रखती थी, तथापि "सुधानिधिकी" सुधावर्षा उसपर होती रहती थी और फिर तो देखते देखते देशोपकारक, वैद्य, वैद्यराज, हिन्दी वैद्यकल्पतरु, आरोग्यसिन्धु, वनौषधिप्रकाश, वैद्य-भूषण हिन्दीमें, वैद्यकल्पतरु, धन्वन्तरि प्रभृति गुजरातीमें और वैद्यक-पत्रिका, आयुर्वेद प्रभृति मराठीमें और बङ्गभाषाके अनेक पत्र-सपूतों-मेंसे केवल ढाकेके आयुर्वेदविकाशने उसे सहारा दिया, उसकी रक्षा की; अथवा यों कहना चाहिये कि उसके बाडीगार्ड बने। सर्व-

साधारण पत्रोंकी सहायता भो बराबर मिलती ही रही; इसके लिये अवश्य ही सम्पूर्ण वैद्यकपत्रोंके तथा भारतमित्र, श्रीवेङ्कटेश्वर, वीरभारत, अभ्युदय, इन्दुप्रकाश, गुजराती प्रभृति पत्रोंके कृपालु सम्पादक धन्यवादके पात्र हैं। आशा है कि अब भी वे वैद्य-सम्मेलन पर पूर्ववत कृपादृष्टि रखेंगे। तथापि यह कहना ही चाहिये कि प्रत्येक संस्थाको अपने निजके "मुखपत्र" की आवश्यकता हुआ ही करती है।

अब तक वैद्यसम्मेलन बालक था; इसे पुष्ट और जीवित रख कुछ खेल कूद और आमोद प्रमोद करनेमें तत्पर रखना ही उसके संरक्षकोंका उद्देश्य हो सकता था; किन्तु उसके पांच वर्षकी आयुमें कानपुरमें उसका विद्यारम्भ संस्कार हुआ है, आयुर्वेदकी परीक्षाओंका आरम्भ किया गया है। अब विद्यासे उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध जुड़ चुका है और अब वह इस योग्य हुआ है कि स्वयं वेदका घोष करे, आयुर्वेदका गान करे, अपने उद्देश्योंका व्याख्यान करे, अपने कार्योंका मीज़ान लगावे। बिना उपनयन संस्कारके वेदपाठका अधिकार नहीं मिलता। अब वैद्यसम्मेलनका आठवां वर्ष है, संवत १९६३ में इसका जन्म हुआ था यह उसकी आयुका आठवां वर्ष चल रहा है। इसलिये उसके उपनयन संस्कारका यह "मुखपत्र" प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसके साथी सहयोगी, उसके कृपालु रक्षक तो उसका सब प्रकार पोषण करेंगे ही, अब वह स्वय भी मुख खोल कर आयुर्वेदका गुणानुवाद करेगा। इसीलिये सम्मेलनके मुखपत्ररूपसे यह त्रैमासिकपत्रिका अवतरित होती है। एक बात और है। प्रायः जितनी सभाएं सभासद बनाती हैं वे सभी अपने सभासदोंको परिवर्तनमें कुछ न कुछ मासिकपत्र या पुस्तकें प्रदान किया करती हैं। यद्यपि वैद्यसम्मेलनके सभासद उसका अङ्ग पुष्ट कर उसे कुछ कार्य करने योग्य और अपने उद्देश्योंका आन्दोलन करने योग्य बनानेको ही हैं; तथापि कुछ लोग यह पूछ ही बैठते हैं कि यदि हम सभासद बनें तो हमें लाभ क्या होगा, हमें उसके परिवर्तनमें सम्मेलनसे क्या प्राप्त होगा? इसलिये सम्मेलनके कुछ सभासदोंने इस बातका प्रस्ताव किया कि वैद्यसम्मेलनकी कोई मुख-पत्रिका अवश्य होनी चाहिये। कुछ सज्जनोंकी सम्मति थी कि कोई प्रचलित वैद्यकपत्र ही मुखपत्र बना लिया जाय, कुछ चाहते थे

कि स्वर्गवासी शङ्कर दाजी शास्त्री पदे महोदयका "सद्वैद्यकौस्तुभ" फिर वैद्यसम्मेलनके मुखपत्र रूपमें निकाला जाय और कुछ कहते थे कि नहीं यदि पत्र हो तो उसके नामसे वैद्यसम्मेलनका परिचय प्राप्त होता रहे। आयुर्वेदमहामण्डल अपने कृपालुओंकी सम्मति अग्राह्य नहीं कर सकता था तथापि यह विचार हुआ कि इसके सञ्चालनके लिये धन कहांसे आवेगा? अभी तो सम्मेलनकी आमदनी इतनी भी नहीं है कि उसके कार्यालयका खर्च साल भर तक चलता रहे। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि आयुर्वेदमहामण्डलका वार्षिक कार्यविवरण तथा अन्य कागजपत्र छपानेमें प्रति वर्ष दो सौसे अधिक रुपये खर्च हो ही जाते हैं। इसलिये वह काम इसी पत्रिकासे लिया जाय और इस पर ध्यान रखा जाय कि इस कार्यमें यथासम्भव व्यय न बढ़ने पावे: इस प्रकार वैद्यसम्मेलनको जो कार्य पहले अलग करने पड़ते थे, वे इस पत्रिकाके द्वारा निकलते जायगे और नियमित रूपसे निकलनेवाली एक पत्रिका भी वैद्यसम्मेलनके अधिकारमें रहेगी। यह बात अवश्य ही खटकती है कि पत्रिका त्रैमासिक है और अपने सहायकोंकी सेवा वह शीघ्र नहीं कर सकेगी; तथापि इसमें मण्डल निरुपाय है। न तो उसके पास निस्वार्थभावसे अवैतनिक यथार्थ काम करनेवालोंकी विपुलता है और न आर्थिक सुविधा ही है। तथापि यदि दयालु पाठकोंकी कृपा रही, सम्मेलनके सभासदोंकी वृद्धि बराबर होती गयी तो बहुत सम्भव है कि आगे यह और कम समयमें अपने हितैषियोंके पास पहुंचनेका प्रयत्न करे। आशा है इसके प्रेमी-पाठक इसकी संरक्षा करेंगे, अपने स्नेहामृतसे सींचते रहेंगे और इसकी वृद्धि और पुष्टि पर सदा तत्पर रहेंगे। सर्वशक्तिमान परमेश्वर और आयुर्वेदके प्रवर्तक देवता, ऋषियों और आचार्योंकी इस पर सदा शुभदृष्टि रहे, वरदहस्त रहे।

अन्तमें प्रयागके कलेक्टर और मजिस्ट्रेट मिस्टर फ्रीमेण्टल साहब बहादुरको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने उदारतापूर्वक बिना किसी झंझटके उसी दिन उसी समय सरलता और उदारतापूर्वक इसके प्रकाशित करनेका डिक्लेरेशन स्वीकृत कर लिया। अतएव हम आपके कृतज्ञ हैं।

सम्पादकीय विचार।

उद्योग ही सफलताकी जड़ है; इससे कलकत्तेके कविराज आगामी षष्ठ वैद्यसम्मेलनकी सफलताके लिये देरसे ही क्यों न हो, भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं। यह आवश्यक है कि जब बङ्गालमें सम्मेलन हो रहा है तब बङ्गालके प्रतिनिधियोंकी संख्या सर्वत्रसे अधिक हो। इसके सिवाय भारतवर्षभरमें यह बात प्रचलित है कि बङ्गालके कविराज विशेष व्युत्पन्न होते हैं; इस बातको प्रत्यक्ष प्रमाणित करनेका यही अवसर है और साथ ही यह भी दिखला देनेका समय है कि वे जैसे व्युत्पन्न हैं, वैसे ही समयके अनुसार आगे पैर बढ़ा कर कर्तव्यदक्षतामें भी बढ़े हुए हैं। इस बातके लिये आवश्यक है कि सर्वत्रके कविराजोंको यह संवाद सुना दिया जाय। इसलिये पूर्व और पश्चिम बङ्गालमें पृथक पृथक कुछ सज्जन भ्रमण करनेके लिये गये हैं। वे बाहरी कविराजोंसे प्रदर्शिनीमें वस्तुएं भेजनेका अनुरोध करेंगे और साथ ही वैद्यसम्मेलनमें पधारनेके लिये भी प्रार्थना करेंगे।

अन्यत्र प्रदर्शिनीका अनुष्ठानपत्र छपा है, उससे सब पाठक समझ सकेंगे कि किस किस प्रकारकी वस्तुएं प्रदर्शिनीमें भेजना चाहिये। साथ ही किन नियमोंका पालन करते हुए प्रदर्शिनीमें पदार्थ भेजना है यह भी उसीसे मालूम पड़ेगा। इस समय आयुर्वेद पर गहरी विपत्ति है, उसके सर्वनाशका भयानक भविष्य हृदय दहला रहा है, उसकी विकट मूर्ति हृदयमें भयानक भयका सञ्चार कर रही है! इस समय देश भरके आयुर्वेद-प्रेमियोंको वैद्य और कविराजोंको बड़ी ही उत्सुकताके साथ, बड़ी ही दृढ़ता और दक्षताके साथ अपने आयुर्वेदकी रक्षा करनेके लिये उसे उन्नत और पुष्टबलिष्ठ करनेके लिये हम सबोंको उस विकट परिस्थितिसे झगड़ना होगा। हृदयकी संकीर्णता दूरकर हमें उदार बनना होगा। इस भावको भगाना होगा कि हम जो कुछ जानते हैं, उसे कोई दूसरा न जानने पावे, हमारे पास जो रत्न है उससे कोई दूसरा लाभ न उठाने पावे। हमारे असंख्य ग्रन्थरत्नोंका नाश हो चुका है, न जाने कितने ग्रन्थ आज दर्शनको भी नहीं मिल रहे हैं। इसलिये

आपके यहां जो अमुद्रित ग्रन्थ सुरक्षित रखे हैं, उन्हें प्रदर्शिनीमें भेजकर सबको बतला दीजिये कि अभी भी ऐसे रत्न छिपे हैं जिनके प्रकाशित होनेसे हमारा और संसारका न जानें कितना लाभ हो सकता है। न जानें कितनी बनौषधियां सर्वत्र प्राप्त नहीं हैं, उनमेंसे जो आपके यहां प्राप्त हों उन्हें प्रदर्शिनीमें भेज कर सब भाइयोंको उन्हें जानने पहचाननेका अवसर दीजिये; उनके मिलनेका पता बतला दीजिये जिससे सब भाई उन्हें प्राप्त कर जगतका कल्याण कर सकें। बहुतसी वनौषधियों और धातु द्रव्योंके सम्बन्धमें मत-भेद हैं, उनके सम्बन्धमें कोई कुछ कहता है कोई कुछ, इसलिये ऐसी वस्तुएं आप संग्रह कर भेजें जिनसे इस बातके निर्णय करनेमें सुविधा हो कि कहां किस वस्तुको क्या कहते हैं और कहांकी वस्तुमें यथार्थता पायी जाती है। इसलिये प्रदर्शिनीको सजानेके लिये आपके पास जो वस्तुएं हों, आप जिन्हें संग्रह कर भेज सकते हों, उन्हें भेजिये और शीघ्र भेजिये। यद्यपि प्रदर्शिनीमें वस्तुएं रखनेकी अवधि १० दिसम्बर है तथापि लोगोंको बहुत देरसे सूचना मिली है इस विचारसे आपकी वस्तुएं १५ दिसम्बर तक कलकत्ते-वालोंको मिल जायगी तौ भी हमें आशा है कि वे प्रदर्शिनीमें स्थान पा सकेंगी। प्रदर्शिनी १२ दिसम्बरको खुलकर १८ जनवरी तक खुली रहेगी।

ऐसे बड़े अनुष्ठानकी सिद्धिके लिये सर्वसाधारणकी सहानुभूति चाहिये और सहानुभूतिका फल स्वरूप कार्य सिद्ध करने योग्य द्रव्य चाहिये। प्रदर्शिनीके प्रबन्धके लिये, मण्डप और अन्य तैयारियोंके लिये तो द्रव्य चाहिये ही; परन्तु कलकत्तेवासियोंकी यह भी इच्छा है कि बाहरसे पधारनेवाले प्रतिनिधियोंका भोजन सत्कार भी स्वागतकारिणी सभाकी ओरसे हो। यद्यपि स्थायी समितिकी इच्छा थी कि इस वर्ष जूटका व्यवसाय नष्ट हो जानेसे तथा यूरोपके युद्धके कारण भारतमें अनेक वस्तुओंकी आमदरफ़ रुक जानेसे व्यवसायकी मन्दगति हो गयी है, रुपये पैसेका टोटा हो रहा है। इसलिये स्वागतकारिणी समिति भोजनका प्रबन्ध अपने हाथ न ले। परन्तु स्वागतकारिणीके सभ्योंका आग्रह यही हुआ कि हम अपने महमानोंका सब प्रकारका आदरातिथ्य अपने ही हाथमें रखेंगे।

रही बात इस व्यय भारको सँभालने योग्य स्वागतकारिणी-की आर्थिक स्थिति बनानेकी। इसके लिये सुसङ्गनरेश श्री कुमुदचन्द्रसिंह शर्मा, नाटोराधिपति श्री जगदिन्द्रनाथ राय, प्रसिद्ध-वाग्मी बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बङ्गालके अगुआ और महापुरुष बाबू वैकुण्ठनाथ सेन, श्री सिराजउल इसलाम, बाबू मोतीलाल घोष बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु, बाबू अम्बिकाचरण मजूमदार, पं० राजेन्द्रचन्द्र शास्त्री, डाक्टर सुरेशप्रसाद सर्वाधिकारी, श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण, राय श्री यतीन्द्रनाथ चौधरी, पण्डित श्री माधवचन्द्र तर्कतीर्थ तथा वहांके प्रसिद्ध कविराज श्री राजेन्द्रनारायण सेन, श्री उपेन्द्रनाथ सेन, श्री नगेन्द्रनाथ सेन, श्री ताराप्रसन्न सेन, श्री क्षीरोदचन्द्र सेन, श्री सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी, श्री गणनाथ सेन, श्री कालिदास विद्याभूषण और श्री योगीन्द्रनाथ सेन महोदयके हस्ताक्षरसे एक अनुष्ठानपत्र प्रकाशित किया गया है। जिसमें यह बात दिखलायी गयी है कि आयुर्वेद अनादि कालसे संसारका उपकार करता आ रहा है, भारतमें वह प्रत्यक्ष विराजमान है और पृथ्वीके अन्य देशोंमें रूपपरिवर्तित कर वह अपना काम कर रहा है। फिर कहा गया है कि वैद्यसम्मेलन द्वारा आयुर्वेदकी उन्नतिका प्रयत्न हो रहा है और अब तक अपने पांच अधिवेशनोंमें उसने अमुक अमुक कार्य किये हैं। फिर दिखलाया गया है कि बङ्गालके कविराजोंकी श्रेष्ठता सर्वत्र विख्यात है, उस ख्यातिकी रक्षाके लिये यहांके कविराजोंको ही नहीं किन्तु सर्वसाधारणको भी उदारता पूर्वक स्वागतकारिणी समितिकी सहायता करनी चाहिये; जिससे वह अपने कर्तव्यको सँभालने योग्य स्थितिमें पहुंच जावे। आशा है, ऐसे धुरन्धर लोगोंके अनुरोधका विचार कर बङ्गाली भाई अवश्य ही स्वागतकारिणीका हाथ भरा पूरा बना देंगे।

सम्मेलनकी सफलताका बहुत कुछ आधार उसके सभापति पर होता है। इस वर्षके वैद्यसम्मेलनके सभापति सुप्रसिद्ध विद्वान आयुर्वेदमार्तण्ड पण्डित लक्ष्मीराम स्वामी महोदय नियुक्त हुए हैं। आप दादू सम्प्रदायके साधु हैं, नामके ही साधु नहीं किन्तु सचमुच प्रकृतिके भी साधु हैं, एक बार दर्शन करनेसे ही आप पर लोगोंकी भक्ति हो जाती है। आपका ब्रह्मचर्यबल आपकी स्वरूप कान्तिको प्रकाशित करता है। आपका अगाध पाण्डित्य

लोगोंको दङ्ग करता है। आपकी वैद्यकसम्बन्धी योग्यताको देख कर अखिल भारतवर्षीय द्वितीय वैद्यसम्मेलनने आपको "आयुर्वेद-मार्तण्ड" की बहुमाननीय उपाधि दी है। आप जयपुर नरेशके राजवैद्य हैं और जयपुरमें जो राजकीय संस्कृत विद्यालय है उसके आयुर्वेद विभागके आप प्रधानाध्यक्ष (प्रिंसपाल) हैं। आपमें स्वभावकी चपलता और वाचालता तो नहीं है; परन्तु आप विद्याके वारिधि हैं, गम्भीरताके गिरिवर हैं, धीरके धनेश हैं, शान्तिके सरोवर हैं। इससे पूर्ण आशा है कि आपके सभापतित्वमें यह छठा वैद्यसम्मेलन सफलता पूर्वक होगा।

अब हम अपने पाठकोंसे, सभासदों और प्रेमियोंसे पूछते हैं कि आपका कर्तव्य क्या है? मातृमन्दिरका भेरा बज रहा है। चलो हाथमें पुष्प ले उसकी पूजा करनेको चलो, हमारा सर्वस्व आयुर्वेद हमारा मार्ग देख रहा है, कविराजोंकी लीलानिकेतन भूमिमें पधार कर उसे आश्वासन देओ कि तुम्हारी सेवाके लिये तुम्हारी उन्नति और पुष्टिके लिये हम सब कटिबद्ध हैं। देशके प्रान्त प्रान्तमें, कोने कोनेमें जहां जहां वैद्योंका वास है वहां तक इस सन्देशको पहुँचा देना चाहिये और सबको लेकर वैद्यसम्मेलनके सम्मिलनमें संयुक्त होना चाहिये। देश भरके विद्वान वैद्योंको और कर्मी आयुर्वेदानुरागियोंको आकर बतला देना चाहिये कि भाई बङ्गालियो, हम सब इस सहयोगसे अपने आयुर्वेदमें नयी बिजलीका सञ्चार करनेमें समर्थ होंगे। इस अनुपम शक्तिसे उसका कायाकल्प कर हम उसे संसारके सामने दर्पके साथ खड़ा कर सकेंगे और बतला सकेंगे कि संसारको चिकित्साओंका पिता आयुर्वेद आज भी अपनी गुरुगद्दीमें बैठ पूजा पानेका अधिकारी है, अपने शिष्यों और भक्तोंको कल्याणका अमृत पिलानेमें समर्थ है। भाइयो, बङ्गाली भाइयोंकी इच्छाको, प्रेम और उत्साहको देख कर अवश्य षष्ठ वैद्यसम्मेलनमें पधारें। इसी दिसम्बर महीनेकी छुट्टियोंमें उसका अधिवेशन है। बङ्गाली भाई दूरके रहनेवाले हैं, सम्भव है, उन्हें आपका पता न मालूम हो, इसलिये आप तक उनका निमन्त्रणपत्र न पहुँच सके। तौभी परवाह नहीं उनकी इच्छा और प्रेमको ही, उनके हार्दिक भावको ही निमन्त्रणपत्र समझ कर आप कलकत्ते पधारें। कलकत्तेमें हमारे देखने सीखने और बोधग्रहण करनेके बहुत सामान हैं। वहांकी प्रदर्शिनी, वहांका अजायब घर, वहांका चिड़ियाखाना, वहांका समुद्र, वहांका सरकारी वनस्पति-उद्यान, वहांका बाजार न जाने आपके लिये कितना उपयोगी होगा। सबको देखने सुननेसे एक नूतन और अनुपम भावकी उत्पत्ति होगी। इस वर्षका सम्मेलन भी कुछ नयी और अजब शानके साथ होगा; अतएव आपका कलकत्ते आना सर्वथा सार्थक होगा।

आयुर्वेदकी हीनावस्था, उसकी उपयोगिता और उसकी उन्नतिके उपाय।

[लेखक—पं० श्यामबिहारी मिश्र एम. ए. और पं० शुकदेवबिहारी मिश्र बी.ए.]

यह विषय बड़ा ही गहन और गम्भीर है और हमारे जैसे अल्पज्ञोंके लिये ऐसे विषय पर कुछ भी लिखनेका साहस करना उपहासास्पद कहा जा सकता है; पर हमें स्वागतकारिणी सभाकी (चतुर्थ वैद्यसम्मेलन, कानपुर) इस पर लिखनेकी आज्ञा हुई है और उस आज्ञाका पालन करना हमें अत्यावश्यक प्रतीत होता है। अतः अगत्या हम अपने विचार सूक्ष्म रीतिसे प्रकट करते हैं।

आयुर्वेद हमारे यहांका अति प्राचीन शास्त्र है जो हमारे विद्वान और अनुभवी ऋषियों द्वारा प्रणीत हुआ है। धन्वन्तरादिके समय इसका प्रताप ऐसा प्रबल था कि कैसे ही रोगोंको चंगा कर देना उनके लिये बायें हाथका काम था। चरक, सुश्रुत, वाग्भट इत्यादि महापुरुषोंने इसकी बड़ी अभूतपूर्व उन्नति की और समस्त भारतवर्षमें इसकी उच्च ध्वजा फहरायी। उस समयसे लेकर जब तक भारतमें हिन्दू साम्राज्य रहा इसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गयी; पर जैसे जैसे देशमें हिन्दू बलकी हीनता होती गयी वैसेही आयुर्वेद भी क्षीणावस्थाको प्राप्त होता आया! यहां तक कि अब तो एक कहावत हो गयी कि वैद्य वही है जो अपनेको उस नामसे पुकारे! बड़े शहरोंमें सिंगी लगानेवाले और आंवला, हड़, बहेड़ा मात्र लेकर फिरनेवाले कजड़ और नट तक गलियोंमें फिरते और उच्चस्वरसे जब "वैद! सिंगी लगावें, दांत का दर्द मिटावें" इत्यादि पुकारते देखे और सुने जाते हैं तब लज्जासे शिर नीचा कर लेना पड़ता है! कहते हैं कि एक बार किसी राजाने एक व्यक्ति पर प्रसन्न होकर उससे कहा कि मेरे राज्यमें जितने पेशेवाले हैं उनमेंसे जिस पर आप चाहें आपको कुछ निकासी लगा

दी जाय तो उसने तत्काल ही उत्तर दिया कि महाराज! वैद्यों पर आदमी पीछे मुझे एक आना साल लग जाय। राजाने इस पर आश्चर्य प्रकट किया; क्योंकि उसकी समझसे वैद्योंकी संख्या बहुत थोड़ी थी पर उस व्यक्तिके हठ करने पर उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई। अब तो प्रायः राज्य भरके सभी मनुष्यों पर वह कर धीरे धीरे फैलने लगा; क्योंकि ऐसा शायद कोई भी मनुष्य न निकलेगा जो अपने घरवालों और इष्ट मित्रोंसे कभी न कभी छोटी छोटी तकलीफ़में कोई न कोई नुसखा न बतला देता हो! "आंखमें दर्द और लाली है? अच्छा त्रिफलासे धो डाला करो! कफ़ पर पिपरा-मूल, सोंठ, चौक, पित्ता, पीपरका काढ़ा दो। कुत्तेके काटने पर तेल और अकवनका दूध लगाओ।" ऐसी ऐसी सलाहें प्रायः सभी लोग अपने स्वजनोंको दे बैठते हैं। हमारी समझमें इस किम्बदन्तीका तात्पर्य यही है कि इस भांति सुनी सुनायी दवाएं करनेमें लाभके ठौर हानि की विशेष सम्भावना रहती है।

हमारी तुच्छ बुद्धिमें आता है कि अधिकांशमें निम्न लिखित कारणोंसे आयुर्वेदका ह्रास हुआ और उन्हें हटाने पर एवं अन्य आवश्यक उपायोंसे जिनका दिग्दर्शन करानेका प्रयत्न करते हैं, उनका पुनरुत्थान होना सम्भव है:—

(१) इस शास्त्रमें सैकड़ों वर्षोंसे नवीन खोज और गवे-षणाका काम प्रायः विलकुल बन्द है। प्राचीन महर्षियोंने जो कुछ खोज और अनुभवसे किया और लिखा उसीको सदाके लिये अमिट और अन्तिम सीमा मान लेना हम ठीक नहीं समझते। हम स्पष्ट लिखते हैं कि हमें प्राचीन महर्षियों और विद्वानों पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास है पर हमारी तुच्छ बुद्धिमें आता है कि समस्त पृथ्वी मण्डलमें प्रायः कोई भी विषय ऐसा नहीं है कि जिसमें उत्तरोत्तर उन्नति न की जा सकती हो। केवल इतना ही नहीं वलिक इस परिवर्तनशील संसारमें जिस पदार्थकी क्रमशः उन्नति नहीं होती रहती उसकी आप ही आप धीरे धीरे अवनति होती जाती है। यूरोपियन लोगोंमें प्राचीन कालमें हरकुलीज़ नामक एक बड़ा परा-क्रमी पुरुष हो गया है। कहा जाता है कि वह अटलाण्टिक महा-सागर पर जहां तक मनुष्यका गम्य था पहुँच कर उस स्थान

पर एक भारी खम्भ गाड़ दिया। जिसका नाम हर्कुलीज़ खम्भ (Hercules column) पड़ा और लोगोंका विश्वास था कि उसके आगे बढ़नेमें प्राणोंका भय है। अन्तमें अमेरिकाका पता लगानेवाला सुप्रसिद्ध कोलम्बस उक्त प्रयोजनसे हर्कुलीज़ खम्भके आगे बढ़ा पर उसके जहाज़ पर जो लोग उसके साथ थे उसे भला बुरा कहते हुए बकने लगे। "अब ये हर्कुलीज़से भी बढ़ जायँगे! इनको अपना प्राण देना और हमारा लेना ही अभीष्ट है!! यह तो पागल है पर हम लोग इसके साथ अपने प्राण क्यों खोवें!!!" कोलम्बस इन लोगोंको बराबर धैर्य बँधाता रहा पर उनके मारे उसका नाकों दम हो गया। एक दिन उन लोगोंने सलाह की कि आओ इस सिड़ीको जहाज़से सोते समुद्रमें फेंक दें और हम लोग लौट चलें; पर कोलम्बसको इसका पता लग गया और बड़ी कठिनाईसे उसने अपना प्राण बचाया। अन्तको उसके साहसका परिणाम अच्छा ही हुआ और इतने भारी अमेरिका प्रदेशका जो तब तक अविदित था पता लग गया! अतः हम लोगोंको चाहिये कि महर्षियों तकके काम पर सदाके लिये इति श्री न लगा कर आगे बढ़नेका उद्योग निरन्तर करते जायँ और आयुर्वेदीय खोजके काममें विद्वान लोग कटिबद्ध होकर लग जायं, परिणाम अवश्य ही अच्छा होगा; देशके जल वायुमें, लोगोंके शरीरों और मिज़ाजोंमें, औषधियोंके गुणों एवं प्रायः सभी पदार्थोंमें धीरे धीरे परिवर्तन हो गये हैं और होते रहते हैं, एवं नये नये रोग उत्पन्न हुए और हो रहे हैं। ऐसी दशा में सैकड़ों हज़ारों वर्षके प्राचीन नुसखे यदि सभी ठौर सफलता प्राप्त न कर सकें तो आश्चर्य ही क्या है? वैद्यकमें जितनी उन्नति किसी समयमें हुई थी उतनी डाक्टरीमें शायद अब तक नहीं हो सकी है; पर हममें नूतन खोज और आविष्कारोंकी भारी न्यूनता है और इसे दूर करना प्रत्येक स्वदेश और आयुर्वेद हितैषीका पवित्र कर्तव्य है। आयुर्वेदको समयानुकूल (Up to date) कर लेना नितान्त आवश्यक है। उसमें अब तक जो कुछ हो चुका है उसे हम अशुद्ध अथवा अनुचित कदापि नहीं कहते; बरन वही हमारी जड़ और अत्यन्त उपयोगी है पर देश कालानुसार उसमें उचित परिवर्तन और विवर्धन करना अनिवार्य है।

(२) आयुर्वेदीय शिक्षालयोंकी बड़ी ज़रूरत है। अभी उत्सुकोंको इस विद्याके प्राप्त करनेमें बड़ी ही कठिनाइयां हैं। जैसे अन्य विद्याओं और कलाओंके लिये छोटे बड़े सभी प्रकारके शिक्षालय एवं छात्रालय होते और हो रहे हैं वैसे ही इसके लिये होने चाहिये।

(३) अभी जो चाहे अपनेको वैद्य कहने लगे! यह अत्यन्त अनुचित है। वैद्यक सम्बन्धी परीक्षाएं स्थापित होनी चाहिये और बिना परीक्षोत्तीर्ण हुए किसीको भी वैद्यक करनेका आगेसे अधिकार न रहे; पर जो लोग परीक्षाएं स्थापित होनेके पहले हीसे वैद्यक करते हों उनके काममें बाधा न पड़नी चाहिये।

(४) अङ्गरेज़ी अस्पतालोंके समान आयुर्वेदीय चिकित्सालय खुलने चाहिये और उन्हें पूर्णतया उन्नतावस्थाको पहुँचाना चाहिये।

(५) जैसे अङ्गरेज़ीमें कम्पाउण्डर इत्यादि होते हैं वैसे इन चिकित्सालयोंके लिये भी आवश्यक है।

(६) हमारे यहां शल्यचिकित्सा (Surgery) अर्थात् जर्राही-की अवस्था बड़ी ही हीन है। उसे पूर्ण रूपसे उन्नति देनी चाहिये। वैद्यकका काम अधिकांश ब्राह्मणों हीमें रहा और उन्होंने "धार्मिक" और घृणाके विचारोंसे इस विभागकी ओर बहुत कम क्या प्रायः कुछ भी ध्यान न दिया। इसमें विशेष उन्नतिकी आवश्यकता है और चीर फाड़के सभी तरहके नश्तर और यन्त्र बनने चाहिये।

(७) एक बड़ी भारी न्यूनता यह है कि आयुर्वेदीय औषधियां कहीं उस प्रकार तैयार नहीं मिलतीं जैसे कि अङ्गरेजी दवाएं। "घड़ी भरमें घर जलै अढ़ाई घड़ी भद्रा" वाली कहावत कभी कभी चरितार्थ होने लगती है! कभी तो दवा मिलती ही नहीं, कभी मूल काष्ठादिका पहचानना ही कठिन अथवा असम्भव हो जाता है, जिससे औरकी और चीज़ दवामें पड़ जाती है, कभी ताज़ी जड़ी बूटियोंके ठौर वर्षोंकी पुरानी सड़ी गली चीज़ें काममें लानी पड़ती हैं, कभी दिनों एवं सप्ताहों तककी घुटाई अथवा फुंकाईकी आवश्यकता पड़ जाती है, इत्यादि इत्यादि अनेक झंझट लगते हैं कि जिससे ठीक समय पर समुचित प्रकारसे बिना

विशेष कष्ट या कठिनताके रोगी तक औषधिका पहुंचना कठिन हो जाता है। इन सब कारणोंसे इस बातकी भारी जरूरत है कि आयुर्वेदीय औषधालय ठौर ठौर पर खोले जायँ जिनमें प्रायः सभी दवाएं और चिकित्साकी अन्य सामग्री (औज़ार, पट्टी, बर्तन, शुद्ध मधु इत्यादि) आवश्यकता पर मिल सकें। विशेषतः कलकत्तेमें और कुछ अन्यत्र भी यत्र तत्र कतिपय औषधालय खुले हैं पर दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि उनमेंसे अधिकांशमें मनमानी घर जानी औषधियाँ मात्र मिल सकती हैं; जिनके नुसखे छिपे रखे जाते हैं और समाचारपत्रोंमें एवं अन्य प्रकारसे चटकीले भड़कीले विज्ञापन दे दे कर भोलेभाले लोगोंको ठगना ही विशेष देखा जाता है। हम यह नहीं कहते कि कोई भी अच्छे औषधालय नहीं हैं; पर इतना अवश्य है कि सौमेंसे ९० शायद ऊपर लिखे अनुसार हो पाये जायँगे। सद्वैद्योंके लिखे हुए नुसखोंको औषधियां अधिकांश औषधालयोंसे मिलना कठिन है। अतः उत्तम औषधालयोंकी बड़ी आवश्यकता है।

(८) आयुर्वेदके प्रायः सभी ग्रन्थ संस्कृतमें ही हैं जिससे वैद्य बननेके पहले मनुष्यको अच्छा पण्डित हो लेना चाहिये। इसमें समय अधिक व्यय होता है और अनेक लोग पाण्डित्यको ही वैद्यक समझ उसकी ओर मुख्य पदार्थकी अपेक्षा भी अधिक ध्यान दिया करते हैं। हमारे विचारमें आयुर्वेदीय सभी अच्छे ग्रन्थोंके हिन्दी और अन्य प्रान्तिक भाषाओंमें अनुवाद हो जाने चाहिये। इससे लोगोंको बहुत कुछ सुगमता होगी। कुछ आयुर्वेदीय सामयिक पत्र होने चाहिये जिनमें इस शास्त्रकी चर्चा होना रहे।

(९) सामुदायिक संस्थाका भी ऐसे सामयिक पत्रों द्वारा क्रमशः प्रबन्ध हो जायगा। व्यक्तिगत कार्यमें वह सफलता कदापि नहीं हो सकती जो सामुदायिक रीतिसे प्राप्त होती है। वैद्यक सम्मेलनका सङ्गठित होना इस सम्बन्धमें एक शुभ लक्षण कहा जायगा पर सालमें तीन चार दिन काम करनेसे क्या वास्तविक कार्य सिद्ध हो सकता है? अतः इसकी एक स्थायी सभा नियत होना चाहिये और उसकी शाखाएं देश भरमें स्थापित होनी चाहिये। तब उनके द्वारा बराबर बारह मास इस विषयकी चर्चा उठती रहे और समुचित उद्योग हुआ करे।

(१०) सरकारसे युक्तिपूर्वक विनय की जानी चाहिये कि जैसे "वैद्य रत्न" की उपाधि स्थापित करके उसने आयुर्वेदकी उपयोगिता एक प्रकारसे स्वीकार करनेकी कृपा की है वैसे ही अन्य समीचीन रीतियोंसे इसे अपनी बाहुलताकी शीतल छायाका आश्रय दे कर वह यशकी भागी बने । बिना राज साहाय्यके इसकी पूर्ण उन्नति होना अभी दुस्तर प्रतीत होता है । अलोपैथिकके अस्पतालोंको यदि सरकारी सहाय न मिले तो शायद थोड़े ही दिनोंमें उक्त विद्याविशारद कहीं देखनेमें भी न आवें । हम तो आयुर्वेदको धन्य कहेंगे कि भला उसका अस्तित्व तो है और अब भी उसके अच्छे अच्छे ज्ञाता वर्तमान हैं । देशी रियासतोंमें इसका खूब प्रचार होना चाहिये ।

(११) न जानें किस कारण हमारे यहा वैद्यकसे लोगोंने वह सहानुभूति न दिखलायी कि जिसकी उसमें पूर्ण पात्रता पायी जाती है । बरन यों कहें कि उसकी और लोगोंकी उदासीनता और एक प्रकारसे कुछ घृणा सी देखी गयी है ! न जानें किस आधार पर "वैद्यविद्याऽधमाधमा" की ऊटपटांग कहावत प्रचलित हुई ! हम तो कहेंगे कि वैद्यविद्याके समान पूजनीय और श्रद्धेय विद्या और दूसरी है ही नहीं; क्योंकि इसका एक मात्र उद्देश्य मनुष्यका दुःख हटाना है जिससे वढ़ कर और दूसरी बात क्या हो सकती है ? कुछ लोगोंका मत है कि कष्टमें पड़े हुए लोगोंसे वैद्यको धन वसूल करना होता है और एक ओर रोगीको ऊर्द्ध्वश्वास चल रहा हो तब भी वैद्यराज जीकी कड़ाही ज़रूर ही चढ़ेगी । पर हम पूछते हैं कि जिसे सदा ही रोगियोंका हो सङ्ग रहना है वह यदि उनसे अपने निर्वाहार्थ धन न ले अथवा भोजन तक न करे तो क्या वह अपने प्राण भी दे दें ! दुनियामें सभी लोग धन चाहते हैं फिर वैद्य ही क्यों न चाहें ? यदि आप वैद्यको समुचित धन देनेसे मुँह मोड़ेंगे तो इसका परिणाम यही होगा कि विचक्षण बुद्धिवाले लोग इस शास्त्रकी ओर कभी न झुकेंगे जिससे उसकी अवनति ही होगी । अतः वैद्योंको अपनी फ़ीस लेनेमें कुछ भी सङ्कोच न करना चाहिये और न लोगोंको उन्हें उचित फ़ीस देनेमें ही आना कानी करना चाहिये ।

हमारी तुच्छ मतिसे इन और ऐसी ही अन्य बातों पर ध्यान देने और उचित प्रबन्ध करनेसे आयुर्वेदकी पूर्ण उन्नति हो सकती है। उसकी उपयोगिताके विषयमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं क्योंकि इतनी त्रुटियां होते हुए भी आज दिन प्रायः देखनेमें आता है कि छोटे छोटे रोगोंमें तो चाहे जो हो पर राजरोगोंमें हम लोगोंको जो लाभ आयुर्वेदीय औषधिसे मिलता है वह डाक्टरी इत्यादिसे कहीं स्वप्न तकमें नहीं प्राप्त होता। यह अनुभव हमारा ही नहीं वरन अनेक विज्ञपुरुषोंका है और उसका निर्णय सहजमें हो सकता है।

छत्रपुर, बुंदेलखण्ड। } श्यामविहारी मिश्र, शुकदेवविहारी मिश्र,
२८-११-१९१२

साम्प्रति अपने वैद्यक और वैद्योंमें

किन पूर्तियोंकी आवश्यकता है?

[लेखक—पं० उमापति वाजपेयी वैद्य, वैद्यसभा लखनऊ।]

इस संसारके सम्पूर्ण सभ्य देशोंमें जिस जिस रूपमें चिकित्साशास्त्र प्रचलित हो रहा है, वह चाहे जैसे उन्नतिके शिखर पर क्यों न पहुँचा हो इस देशके पवित्र आयुर्वेद हीका परिणामरूप हो जैसे इस संसारके अग्नि तथा चन्द्रमादिक सम्पूर्ण ज्योतिर्मय पदार्थोंकी ज्योति भगवान् भास्करकी किरणोंका रूपान्तर मात्र है, उसी प्रकार प्रचलित सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्र आयुर्वेदके रूपान्तर मात्र हैं। आधुनिक तत्ववेत्ताओं तथा इतिहासज्ञोंने भी इस बातको निस्सङ्कोच होकर स्वीकार कर लिया है।

जिस सरोवरसे निकाली हुई कुल्याओं (नहरों) ने सम्पूर्ण देशरूपी वन और उपवनोंको हरा भरा बनाया था आज वही अगाध सरोवर इतना शुष्कःप्राय होता जाता है और उसके निकटवर्ती लोग जलकी अभिलाषासे लालायित हो रहे हैं यह बड़े ही शोकका

विषय है। आजकल आयुर्वेद और उसके आश्रित वैद्यगणकी हीनावस्थाको देख कर यह अनुमान होता है कि कालक्रमसे इनमें कुछ त्रुटियां अवश्य हुई हैं और उनकी पूर्तिकी परमावश्यकता है। त्रुटियां क्यों हुई हैं और किसके अपराधसे हुई हैं, यहाँ पर इस विवादको लिख कर निबन्ध बढ़ा आप लोगोंका अमूल्य समय मैं नष्ट करना नहीं चाहता। इस निबन्धका मुख्य उद्देश्य यही है कि आयुर्वेद और उसके आश्रित वैद्यगणमें जिन जिन पूर्तियोंकी आवश्यकता है आप लोगोंके सम्मुख यथाशक्ति निवेदन की जाय।

(१) निघण्टु (२) शारीरक (३) निदान।

आयुर्वेदमें सामान्यतः ऊपर लिखे हुए तीन विषयोंमें पूर्तियोंकी आवश्यकता जान पड़ती है।

(१) निघण्टु—सुश्रुतादि ग्रन्थोंमें लिखा है "गोपालादिकोंसे औषधियोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये" और उस समयके लिये यह ठीक भी था क्योंकि उस समयमें वन अधिक थे और प्रायः ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास तीन आश्रमोंके मनुष्य वनमें रहा करते थे। उनको गोपालादिकोंसे औषधिज्ञान प्राप्त करनेमें बड़ी सरलता थी। अब कालक्रमसे वन कम हो गये हैं और वनकी वस्ती तो प्रायः निर्मूल ही हो गयी है। इससे यह प्राचीन उपाय कार्यकर नहीं है और अब औषधियां पंसारीकी दुकानसे लेनी पड़ती हैं; जिससे हम लोगोंको औषधियोंका स्वरूपज्ञान यथावत नहीं होता। यदि कोई हम लोगोंसे पूछे कि पीपल, कुचला अथवा बिलाईकन्दका वृक्ष कैसा होता है तो हम लोगोंको मौन रह जाना होगा; क्योंकि न तो हमने स्वयं उनका वृक्ष ही देखा है और न आयुर्वेदमें कोई ऐसा ग्रन्थ ही है जिसमें औषधियोंके पत्र, पुष्प, फल इत्यादिका यथावत वर्णन हो जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त हो सके; इसलिये ऐसे ग्रन्थोंकी परमावश्यकता है जिनमें औषधियोंके देश, उत्पत्ति समय, पत्र तथा पुष्पादिकोंके सचित्र स्वरूप, गुण, दोष, मात्रा और प्रतिनिधि आदिका सविस्तर वर्णन हो। स्वर्गीय शङ्करदाजी शास्त्री पदेने इस कार्यकी नींव डाली थी; परन्तु शोकका विषय है कि दैववशात उनका शरीरान्त हो जानेसे उस कार्यका अन्त हो गया। निघण्टुमें गुणकारी नवीन औषधियोंका समावेश

भी होना उचित है। जैसे रूमीमस्तगी, चोपचीनी तथा अकरकरा आदि औषधियां प्राचीन चरकादि ग्रन्थोंमें नहीं हैं; किन्तु भाव मिश्रादिकोंने इनको अपने ग्रन्थोंमें लिखा है इसी प्रकार कुनैन तथा चाय आदिक औषधियोंको जो इसी देशमें उत्पन्न होती हैं और जिनके गुण भलीभांति अनुभवसे विदित हो चुके हैं उनको भी हम लोगोंको ग्रहण कर लेना चाहिये।

(२) शारीरक—यद्यपि चरकसंहितामें संक्षिप्त रूपसे और सुश्रुतसंहितामें उसकी अपेक्षा अधिक विस्तारसे शारीरकका वर्णन है; तथापि आजकलके लोगोंके लिये वह पर्याप्त नहीं है और कहीं कहीं तो प्रत्यक्षसे निरा विरुद्ध देख पड़ता है। यथा फुप्फुस दो होते हुए भी एक लिखा है और वृक्कोंके वर्णनमें (मेदः शोणितयोः सारादृक्कयोर्युगलं भवेत्। तौ तु पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः) केवल इतनाही लिखा है जिससे उनके मुख्य कार्यका पता कुछ भी नहीं चलता है। केवल इसी एक उदाहरणसे सर्वसाधारणको उपर्युक्त युक्तिकी सारवत्ताका ज्ञान हो सकता है। अनुमानसे जान पड़ता है कि यह दोष दिव्यदृष्टि महर्षियोंके नहीं हैं। विदेशियोंने अपने समयमें जब हमारे प्राचीन ग्रन्थोंका नाश किया, उस समय जो कुछ उन्हें भग्नावशेष मिले उन्हींको लेकर तत्कालीन पण्डितोंने उनका जीर्णोद्धार किया; उसी समय ये त्रुटियां रह गयीं। जो हो, अब उनकी पूर्तिकी परमावश्यकता है। यहां पर यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है कि तृतीय वैद्यसम्मेलनके सभापति महोदय वैद्यावतंस श्रीमान पण्डित गणनाथ सेन जी एम० ए०, एल० एम० एस० विद्यानिधि, कविभूषण बड़े परिश्रमसे प्रत्यक्ष शारीर नामक ग्रन्थकी रचना कर रहे हैं जिसके प्रकाशित होते ही आशा है इन त्रुटियोंकी बहुत कुछ पूर्ति हो जावेगी। इस उपकारके लिये कविराज महाशय वैद्योंकी ओरसे सर्वथा धन्यवादके पात्र हैं।

(३) निदान—प्राचीन ग्रन्थोंमें महर्षियोंने निदानके वर्णनमें यद्यपि वातादि दोषोंके अनुसार निदानादिकोंका वर्णन करके बड़ा ही सरल मार्ग निकाल दिया है तथापि सम्प्राप्ति आदिका वर्णन ऐसे संक्षेपसे किया हैं कि हम ऐसे स्थूल बुद्धिवालोंके लिये वह पर्याप्त नहीं है। जैसे ज्वरकी सम्प्राप्ति (मिथ्याहारविहाराभ्यां

दोषा ह्यामाशयाश्रयाः-वहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यूरसानुगाः) यह लिखी है। इससे साधारण वैद्य यह नहीं जान सकता कि ज्वरमें सन्ताप, स्वेदावरोध, छिक्कावरोधादि क्यों होते हैं। इसलिये निदानकी शारीरकके अनुसार विस्तार पूर्वक वर्णनकी आवश्यकता है और कुछ रोग जिनका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं है उनका समावेश करना भी उचित है; क्योंकि प्लेग, उरस्तोय (प्ल्यूरिसी) इत्यादि रोगोंका हमारे आयुर्वेदमें कुछ भी निदान नहीं है।

सामान्यतः वैद्योंमें निम्नलिखित पांच विषयोंमें पूर्तिकी आवश्यकता है।

(१) वैद्योपयोगी व्याकरणादि शास्त्रोंका ज्ञान (२) शस्त्रक्रिया (३) नेत्र चिकित्सा (४) आचारणकी उदारता (५) सामान्य निपुणता (जनरेल कलचर)।

(१) वैद्योपयोगी व्याकरणादि शास्त्रोंका ज्ञान—हमारे वैद्योंमें अधिकांश प्रान्तिक भाषाओंमें अनुवादित चिकित्सा ग्रन्थोंको ही पढ़ कर चिकित्सा करनेवाले देखे जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनको आयुर्वेदशास्त्रका यथावत ज्ञान नहीं होता है। आयुर्वेदके यथार्थ ज्ञानके लिये पहली आवश्यकता व्याकरण जाननेकी है। तदनन्तर सामान्य रीत्या साहित्य, सांख्य तथा न्यायादि शास्त्रोंका ज्ञान भी आवश्यक है। जो व्याकरण तथा साहित्य नहीं जानता है उसके लिये तो मूल ग्रन्थोंका पढ़ना ही असम्भव है; और सांख्य तथा न्यायादि शास्त्रोंके बिना सुश्रुत संहितादि ग्रन्थोंमें वर्णित सृष्टि क्रमादि विषयोंका समझना अत्यन्त दुस्तर है और इन शास्त्रोंके न जाननेसे हम लोग शिक्षित समाजमें मूर्ख समझे जाते हैं और योग्य प्रतिष्ठाको नहीं पाते हैं।

(२) शस्त्रक्रिया—सुश्रुतादि ग्रन्थोंमें उत्तम रीतिसे वर्णित होते हुए भी शल्य चिकित्साको वैद्य लोगोंने घृणित समझ कर परित्याग कर रखा है। जिसका भयङ्कर परिणाम यह हुआ है कि व्याकरणादि शास्त्रोंको पढ़ कर जिन वैद्योंने आयुर्वेदका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है वे भी अधूरे ही रह जाते हैं। जिसके कारण लोगोंको आयुर्वेदशास्त्रको शल्य चिकित्सा विहीन कहनेका अवसर

प्राप्त होता है और आयुर्वेद पर पूर्ण श्रद्धा रहते हुए बहुधा लोगोंको वैदेशिक चिकित्साशास्त्रज्ञोंके द्वारस्थ होनेके लिये विवश होना पड़ता है। अतएव हम लोगोंको इसके अभ्यासके लिये बहुत शीघ्र सयत्न होना चाहिये।

(३) नेत्र चिकित्सा—शालाक्य तन्त्र भी वैद्योंके हाथसे गया हुआ ही सा है। कोई आंख या कानका रोगी पहले तो वैद्यराजके पास जायगा ही नहीं और यदि गया भी तो वह स्पष्ट कह देंगे "भाई हम आंखकी चिकित्सा नहीं जानते किसी डाक्टर या सर्थियेके पास जाओ" इससे अनभिज्ञ लोगोंको यही धारणा हो जाती है कि आयुर्वेदमें शालाक्य तन्त्र है ही नहीं। हम लोगोंको इस त्रुटिको दूर करनेके लिये भी कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

(४) आचरणकी उदारता—यह विषय बड़ा ही गम्भीर है। वैद्योंमें पारस्परिक निन्दा, द्वेष आदिकी बहुलता प्रायः देखनेमें आती है। इससे वैद्य और वैद्यक दोनों हीको बहुत हानि पहुंचती है। मिलजुल कर काम करना तो मानो हम लोगोंने सीखा ही नहीं है। कैसा ही सकल गुण सम्पन्न कोई वैद्य क्यों न हो परन्तु मूर्खसे मूर्ख वैद्यमें भी उसके गुणोंको स्वीकार करनेकी उदारता देखनेमें आनी कठिन है। निश्चय समझिये, हम अपने भाई दूसरे वैद्योंकी निन्दा और उनसे द्वेष करके केवल अपने और हिन्दू मात्रके प्रिय आयुर्वेदशास्त्रके नाशका बीड़ा ही उठाते हैं। अधिकांश वैद्योंमें ग्रामीणताकी मात्रा भी अधिक होनेके कारण आयुर्वेदशास्त्र और हम लोगोंको बहुत क्षति पहुंच रही है। मधुरालाप, यथोचित वेष और नम्रतादि गुणोंके अभावसे भी प्रायः हम लोग शिक्षितोंकी दृष्टिसे गिर जाते हैं और जहाँ आयुर्वेदका राज्य होना चाहिये वहाँ अन्य चिकित्साशास्त्रोंके मानका मार्ग परिष्कृत कर देते हैं। आयुर्वेद और वैद्योंकी उन्नतिके लिये सत्यका व्यवहार करनेकी भी बड़ी भारी आवश्यकता है। यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि सर्वसाधारण आंख मूंद कर डाक्टरी औषधियां ले आते हैं; परन्तु अति प्रयोजनीय होने पर भी किसी वैद्यसे कोई औषधि मोल लेनेके पहले ग्राहकके चित्तमें अनेक संशय उत्पन्न हुए बिना नहीं रहते। हम लोगोंमें आचरणकी शुद्धताका अभाव ही इस अविश्वासका

एक मात्र कारण है। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि हम लोग यथा सम्भव रोगी या ग्राहकको ठगनेमें त्रुटि नहीं करते। शुद्धाचरणके बलसे सर्वसाधारणके चित्तोंमें हम लोग यदि अपना विश्वास उत्पन्न कर लें तो सर्वसाधारणको भी बहुत लाभ पहुंचे और वैद्योंकी प्रतिष्ठा भी बढ़े।

(५) सामान्य निपुणता—एक विषयको पूर्ण रूपसे जाननेके लिये अन्य विषयोंको भी थोड़ा थोड़ा जाननेकी आवश्यकता है। इस सिद्धान्तके अनुसार योग्य वैद्य होनेके लिये भी केवल आयुर्वेद-शास्त्रका ज्ञान ही यथेष्ट नहीं है। तात्पर्य यह है कि अनेकानेक विषयोंके ज्ञानके बिना योग्य वैद्य होना प्रायः असम्भव है। यदि विचार कर देखा जाय तो आयुर्वेदशास्त्रके ज्ञानकी पूर्णताके लिये कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसकी कुछ न कुछ आवश्यकता न हो। देखिये, वैद्यको धातु और रत्नकी परीक्षा यदि न हुई तो भस्म करनेके लिये जिस किसी प्रकारके भी धातु तथा रत्न उसे मिल जाँयगे उन्हींको भस्म कर वह रोगियोंको लाभके बदले हानि पहुंचानेका कारण होगा। पाक क्रियामें भी कुशल होना वैद्यके लिये किसी प्रकारसे कम आवश्यक नहीं है। घृत, तेल तथा अव-लेहादि बनानेमें इसकी उपयोगिता सिद्ध होती है। कालज्ञ होनेके लिये ज्योतिष शास्त्रका जानना भी वैद्यको उचित ही है। देशज्ञ होना भी वैद्यके लिये परमोचित है; क्योंकि अनेकानेक देशोंके जल वायुका ज्ञान यदि उसे नहीं है तो वह एक देश या प्रान्तसे दूसरे देश या प्रान्तमें जाकर अपने कर्त्तव्यका यथावत पालन न कर सकेगा। कहाँ तक गिनावें; संक्षेपमें इतिहास, धर्मशास्त्रसे लेकर सूची कर्म, सुनारी आदि कोई काम भी ऐसा नहीं है जिसकी कुछ न कुछ वैद्यको आवश्यकता न हो। एक विशेष बात यह भी है कि डाक्टरोंको तो औषधियाँ बनी बनायी मिलती हैं केवल व्यवस्था-पत्र लिखनेका भार उनके ऊपर रहता है; परन्तु वैद्योंके लिये यह सुभीता नहीं है उनको सब प्रकारकी औषधियाँ अपने घरमें प्रस्तुत करनी पड़ती हैं।

अब मैं आयुर्वेदशास्त्र तथा वैद्योंकी पूर्णोन्नतिके लिये और भी जिन बातोंकी आवश्यकता है उनका अपनी मन्दमतिके अनुसार

उल्लेख करनेको अग्रसर होता हूँ। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है कि आयुर्वेदका प्रभाव अथवा प्रचार बढ़ानेके लिये स्थान स्थान पर दातव्य औषधालयों तथा आतुरालयोंकी स्थापनाकी परमावश्यकता है। आयुर्वेद पुस्तकालयोंका भी देशमें पूर्ण अभाव है। इस अभावको दूर करना भी बहुत ही प्रयोजनीय है। अन्तिम आवश्यकता जो किसी प्रकारसे कम महत्वकी नहीं है, वह यह है कि एक ऐसा औषधि-भवन किसी प्रधान नगरमें स्थापित किया जाय जिसमें सब प्रकारकीऔषधि द्रव्योंका संग्रह हो जिससे समय समय पर वैद्य लोग जाकर प्रत्येक जड़ी बूटी तथा पत्तियोंको देख कर प्रत्येक औषधिका स्वरूप हृदयङ्गम कर सकें ; क्योंकि ग्रन्थोंमें कैसा ही विस्तृत वर्णन क्यों न हो परन्तु विना आंखों देखे किसी वस्तुका यथार्थ स्वरूप ज्ञान हो जाना बड़ा ही दुर्लभ है और भूल हो जाना ही स्वाभाविक है। इसी औषधि-भवनके साथ ही एक औषधोपवनका भी लगाया जाना उचित प्रतीत होता है जहांसे वैद्य लोग विना सन्देह औषधियां मंगा सकें।

प्यारे मित्रो ! यह लेख विद्वत्ताके अभिमानसे या लेख लिखनेकी उत्सुकतासे या दूसरों पर आक्षेपके विचारसे नहीं लिखा गया है ; किन्तु स्वागतकारिणी सभाके मंत्रिवरकी आज्ञाका पालन करना अवश्य कर्त्तव्य समझ कर यह क्षुद्र निबन्धरूप पुष्पाञ्जलि आप लोगोंको सादर समर्पण की जाती है। आप लोगोंसे सविनय प्रार्थना है कि इसमें जो कुछ अनुचित शब्द आ गये हों उनको अपनी सहृदयतासे शुद्ध कर लीजियेगा। त्रुटियां भी इसमें बहुत सी रह गयी होंगी। यह भी मैं भलीभांति जानता हूं परन्तु आप ही लोगों पर उनको भी दूर कर लेनेका भार है। अन्तमें आप लोगोंकी सेवामें यह भी निवेदन है कि इस निबन्धमें आयुर्वेद तथा आयुर्वेद-सेवियोंकी उन्नतिके लिये जो आवश्यकताएं ध्यानमें आयी हैं उनका निवेदन आप लोगोंका अमूल्य समय नष्ट न करनेकी इच्छासे बहुत ही संक्षेपमें किया गया है। यदि विस्तृतरूपमें उनका वर्णन किया जाय तो कई बड़े बड़े ग्रन्थ बन सकते हैं और विस्तृत वर्णन करनेकी बुद्धिमानोंके सम्मुख कुछ आवश्यकता भी नहीं है। आशा है इस सभामें बहुमतसे उचित विवेचित होनेवाले विचारोंको

कार्यमें परिणत करनेमें भी हम लोग कोई बात उठा न रखेंगे। ईश्वर हम लोगोंमें तन मन धनसे आयुर्वेदकी सेवा करनेकी प्रबल कामना उत्पन्न करें यही प्रार्थना है।

नूतन आविष्कारोंकी आवश्यकता।

[लेखक—पं० किशोरीदत्त शास्त्री राजवैद्य, रिवारी।]

जब किसी भी वस्तुका अभ्युदय होनेवाला होता है, तब उसमें आविष्कार होने लगते हैं। बिना आविष्कारोंके कोई भी विषय वृद्धिङ्गत नहीं होता और न वह सर्वजनप्रिय ही होता है। आविष्कारकी यह आवश्यकता, यह सुन्दरता, अपने विषयको प्रौढ़ बनानेकी शक्ति ईश्वरीय अथवा मानवीय विषय मात्रमें समान है। ईश्वर यदि प्राकृतिक नियमों द्वारा आविष्कारकी आवश्यकता हमारे हृदय-पटल पर अङ्कित न करता तो हम भी आविष्कारोंको अजागल स्तनवत् निरर्थक समझते। प्राकृतिक नियमोंसे मालूम होता है कि कण्टकी गुलाबमें यदि सुरभित फूलोंका आविष्कार न होता तो गुलाब कभी सुन्दर और सर्वजनप्रिय न होता। यदि आम्रमें पहलेकासा खट्टापन बना ही रहता तो उसका कुछ भी आदर न होता। इसी प्रकार ईश्वरीय नियमोंकी भांति मानवीय नियमोंमें भी आविष्कारकी आवश्यकता और महत्ताके सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं जैसे नवीन नवीन रेल, जहाज़, तार, टेलीफ़ोन, हवाई जहाज़ इत्यादि। इन नवीन आविष्कारोंसे मनुष्य मात्रका कितना उपकार हुआ है इसका विचार करनेसे आविष्कारोंकी आवश्यकताका पूर्ण अनुभव हो जाता है।

इस प्रकार मानवीय आविष्कारोंकी आवश्यकता देखते हुए हमको अपने वैद्यकशास्त्रके आविष्कारों पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। वैद्यकशास्त्रके आविष्कारोंसे प्राणिमात्रका जो उपकार हो सकता है; उसकी तुलना हम किसी असाधारण वस्तुसे भी

नहीं कर सकते। जिस शरीरके रहनेसे ही हम कुछ करनेके लिये समर्थ हो सकते हैं; जिस शरीरके रहनेसे ही हमको बल आत्मोपकार ही नहीं किन्तु परोपकार करनेको समर्थ हो सकते हैं उस शरीर, उस जीवनको समर्थ और उपयुक्त बनानेमें जिस शास्त्रका महत्व विख्यात है उस शास्त्रके आविष्कारोंकी कितनी अधिक आश्यकता है, यह बात थोड़ा भी विचार करनेसे स्पष्टतया ध्यानमें आ जाती है, इस बातको प्राचीनाचार्य भी भलीभांति जानते थे और उन्होंने योग, संभाषण विधि (शास्त्रार्थ या व्याख्यान) और अकाट्ययुक्तियोंसे स्थल स्थल पर संहिताओंमें नवीन नवीन आविष्कारोंका वर्णन किया है। ये आविष्कार भी साधारण नहीं थे कि जिनका २ या ४ दिन प्रचार होकर लुप्त हो जाते। वे आविष्कार उसी रूप या रूपान्तरमें आज तक भी पाये जाते हैं। उन्हीं आविष्कारोंने आयुर्वेदको उन्नत किया और उस उन्नतिके समयको आयुर्वेदके लिये स्वर्णयुग बना दिया।

उन आविष्कारोंका क्रमशः वर्णन आपको आयुर्वेदके प्राचीन इतिहासमें मिलेगा। सुश्रुतने जो शल्यतन्त्रका वर्णन विशेषरूपसे किया है वह बहुत वर्षों तक भारतीय वैद्योंके द्वारा उसी प्रकार प्रचलित रखा गया यहाँ तककि उस शल्यतन्त्रके प्रचारका अस्तित्व तब तक वर्त्तमान था जब तक कि डाक्टरीके आदि गुरू यूनानके चिकित्सक यहां आयुर्वेदविद्या सीखने आये थे। आयुर्वेदका शालाक्य तन्त्र चाहे हमारे आलस्यसे आज नाम मात्रको भी न मिले; किन्तु प्राचीन समयमें भग देवताके फोड़ दिये गये नेत्रोंको निकाल कर जब अश्विनीकुमारोंने दूसरे नेत्र लगा दिये थे और पूषाके टूटे हुए दाँतोंको निकाल कर नये दाँत लगा दिये थे उस समय शालाक्यतन्त्र अवश्य उन्नति दशामें था। उसी शालाक्यतन्त्रके सहारे शिरके समस्त अवयवोंके रोग समूहकी चिकित्सा की जाती थी। वह शालाक्य तन्त्र भोजके समयमें भी उतना उन्नत नहीं था क्योंकि भोज प्रबन्धके एक सामयिक समाचारसे यह विदित होता है। जब भोजके मस्तिष्कमें एक कृमिरोग हो गया था तब शालाक्य तन्त्रके अल्पज्ञ वैद्य उसे आराम न कर सके उस रोगको प्राचीन वैद्य अश्विनीकुमारोंने ही आकर निर्मूल किया था।

काल क्रमसे इसी प्रकार आयुर्वेदके एक एक अङ्गका धीरे धीरे लोप होता चला गया। यहाँ तक कि आजकल आयुर्वेद हमारी असावधानतासे कितना जीर्ण और शिथिल होता चला जाता है, इसका वर्णन करनेसे अश्रुधारा वह चलती है, हृदयमें दरारें पड़ने लगती हैं और निराशके अन्धकारमें मग्न हो जाना पड़ता है।

प्रिय पाठको! इस सारे दुःखका, आयुर्वेदकी हीन दशाका पाप आयुर्वेदके अनुयायी वैद्यों पर है। वे जैसे आलस्यके पुतले हैं उनके सदृश कोई न होगा।

आयुर्वेदकी सामयिक दशा वृद्धावस्थाके समान है। वृद्धावस्थामें वल्य और वृष्य औषधि सेवन करनेसे हो निर्बलता दूर होती है, निर्बलता दूर होनेसे वृद्ध सारे अङ्गोंसे कर्त्तव्यशील हो जाता है। इसी प्रकार हमको नवीन आविष्कार जैसे वल्य वृष्य प्रयोग दे देकर वृद्ध आयुर्वेदको पुनः वलिष्ठ करना चाहिये।

आयुर्वेदके जीर्णोद्धार करनेके लिये हमको किन किन नूतन आविष्कारोंकी आवश्यकता है? यह बात विद्वान् वैद्यमात्रके विचार करनेके योग्य है। मेरे विचारमें जैसे नूतन आविष्कारोंकी आवश्यकता है उनको यहाँ पर कुछ थोड़ासा वर्णन करके इस लेखको समाप्त करूंगा।

इस समय चिकित्सामें वैद्य मात्रको शस्त्रचिकित्सा मुख्य समझ कर सम्पूर्ण रूपसे उसके सम्पादन करनेका प्रयत्न करना चाहिये। शस्त्रचिकित्सामें अज्ञ रह जानेसेही हमारा आयुर्वेदका मुख्य चिकित्सांग शिथिल और अकर्मण्य हो गया है। इसलिये उसका अभ्यास करके शस्त्रचिकित्साको पूर्ण कर उसके आवश्यक आविष्कारोंका उद्धार करना चाहिये।

इसी प्रकार कुछ अनुभवी तथा चतुर वैद्योंकी समिति द्वारा औषधिनिर्माणकी विशेष रोति होनी चाहिये। जिससे औषधियां उत्तम रूप और सद्यः फलदायिनी हों और उन प्रयोगोंकी एक तालिका बननी चाहिये जिनके गुण अटल और अनुभूत हों। कुछ वैद्योंको अपना मिल कर एक दातव्य चिकित्सालय खोल कर उसमें रोगियोंके संघ पर नवीन नवीन प्रयोगोंका अनुभव

करना चाहिये और उन सबका विवरण महामण्डलके पत्रमें प्रति-मास प्रकाशित होना चाहिये।

प्लेग जैसे भयंकर रोगोंके रोगियोंकी चिकित्साका भार वैद्यों-को स्वयं उठाना चाहिये और भारतके प्लेगके दूर करनेका सौभाग्य इनको स्वयं सम्पादन करना चाहिये।

अपने देशके रोग और रोगियोंका पूर्ण विचार करके उन्हें उस देशका अनुभव करना चाहिये जहां वे जा जा कर प्रवासमें चिकित्साका व्यवसाय करें।

इनके अतिरिक्त समयके अनुकूल जिन जिन आविष्कारोंकी आवश्यकता समझें उन उनका पर्यालोचन करते रहें। इससे उनका अवश्य अभ्युदय होगा, अन्यथा इस समयमें जैसे उद्योग हो रहे हैं उनसे आयुर्वेदका इतना अस्तित्व रहना भी असम्भव है।

अतएव सभी प्रकार उद्योगपूर्वक वैद्योंको कर्त्तव्यशील होना चाहिये जिससे उनकी सभी आशाएं सफल हों!

आयुर्वेद ज्ञाताओंके लिये वृत्ति।

———:०:———

[लेखक—पं० रामनारायण मिश्र राजवैद्य, लखनऊ।]

आयुर्वेदकी उत्कृष्टता, सम्पूर्ण भूमण्डल पर, मध्याह्नके सूर्यके समान प्रकाशित है; परन्तु "कालस्य कुटिला गतिः", सूर्यको भी ग्रहण लगता है और उस पर बादल भी आ जाते हैं; इसी प्रकार हमारा आयुर्वेद भी तमसाच्छादित होकर प्रकाश करनेमें रुक रहा था। अब न्यायी ब्रिटिश राज्यमें सब प्रकारकी स्वच्छन्दता होनेके कारण फिर लोगोंका चित्त आयुर्वेदकी ओर आकर्षित हुआ है। आज परम पुनीत एवं बड़े सौभाग्यका दिन है कि हमारे सब वैद्य भाई सम्मिलित होकर अपनी अपनी मानसिक मलीमसताको दूर करके उस परम पवित्र आयुष्यप्रद आयुर्वेद पर विचार करनेको उद्यत हुए हैं। जैसे पूर्वकालमें यमदग्नि, वशिष्ठ, अङ्गिरा, कश्यप, शांडिल्य आदि महर्षिगण, पुनीत पुण्यभूमि पर बैठ कर आयुर्वेद-विषयों

पर विचार करके सब देशोंमें अपने अपने अनुभवोंको प्रकाश करते थे; जिनके प्रकाशका ही छोटासा उदाहरण-स्वरूप कुछ छिन्न भिन्न असम्पूर्णाङ्ग, चरक आदि संहिताएं अब भी देख पड़ रही हैं।

आज मैं चतुर्थ वैद्यसम्मेलनकी स्वागतकारिणी सभाकी प्रेरणासे एक छोटासा निबन्ध अपनी लघुमतिके अनुसार सम्मेलनकी सेवामें उपस्थित करता हूँ। निबन्ध यह है—"**योग्य आयुर्वेद-ज्ञातओंके लिये मासिक वेतन या अन्य प्रकारकी वृत्तिके पद कौन कौन हो सकते हैं और उनके बनाने या पूर्ण करनेका उपाय।**

प्रथम यह जानना आवश्यक है कि आयुर्वेदके योग्य ज्ञाता कौन हैं? जैसा कि चरक महर्षिने अपनी संहिताके २६वें अध्यायमें कहा हैः—

य इमे कुलीनाः पर्यवदातश्रुताः परिदृष्टकर्माणो दक्षाः शुचयो जितहस्ता जितात्मनः सर्वोपकरणवन्तः सर्वेन्द्रियोपपन्नाः प्रकृतिज्ञाः प्रतिपत्तिज्ञास्ते प्राणिनामभिसरा हन्तारो रोगाणां तथाविधाहि केवले शरीरज्ञाने शरीराभिनिवृत्तज्ञाने प्रकृतिविकार ज्ञाने च निःसंशयाः सुखसाध्य कृच्छ्रसाध्ययाप्य प्रत्याख्येयानाञ्च रोगाणां समुत्थानपूर्वरूप लिङ्गवेदनोपशय विशेषविज्ञाने व्यपगत सन्देहाः त्रिविधस्यायुर्वेद सूत्रस्य ससंग्रह व्याकरणस्य स त्रिविधौषधस्य प्रवक्तारः।"

अर्थात् जो उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं जो बहुश्रुत और दृष्टकर्म्मा हैं, वे प्रवीण हैं, पवित्र हैं, जितहस्त अर्थात् कर्म करनेमें जिनका हाथ कांपता नहीं है, जिनके सम्पूर्ण प्रकारकी सामग्रियां हैं, जिनकी इन्द्रियां बलयुक्त हैं, जो स्वभाव और रोगीकी प्रकृतिको पूर्ण ज्ञाता हैं, सिद्धियोंके जाननेवाले अर्थात् आयुर्वैदिक विषयोंके पूर्ण मर्मज्ञ हैं इत्यादि योग्यताओंसे उपयुक्त वैद्योंके द्वारा ही प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा हो सकती है और ऐसे ही वैद्य योग्य कहे जा सकते हैं। और भी योग वैद्योंके लक्षण, चरकादि संहिताओंमें बहुत मिलते हैं जिनका वर्णन करनेसे विषयान्तर हो जाता। इस विषयमें "योग्याऽयोग्य वैद्योंकी समीक्षा" निबन्ध ही अलग है।

प्रत्येक कार्यके आरम्भमें हमारी महत्वाकांक्षाएं, अल्पशक्ति होनेके कारण हमको अपने लक्ष्यसे च्युत कर देती हैं। अतः इस विषयमें अधिक न लिख कर, संक्षेपतः हम वैद्योंकी योग्यताको दो भागोंमें विभक्त करके तदनुसार उनका वेतन भी निर्धारित करते हैं। प्रथम श्रेणीके वैद्योंका वेतन ३०) से आनुभविक योग्यता प्राप्त करते हुए १००) तक होना योग्य है। द्वितीय श्रेणीके वैद्योंका वेतन १००) से आरम्भ होकर क्रमशः योग्यता और अनुभवके अनुसार ५००) तक होना चाहिये। इसके अतिरिक्त एक तृतीय श्रेणी भी होनी चाहिये जिसके विषयमें उस समय तक कुछ लिखना हम उचित नहीं समझते जब तक हम या हमारा वैद्य-संसार कार्य-रूपमें परिणत होकर संसारको कुछ कर न दिखावे।

अब प्रथम श्रेणी वा द्वितीय श्रेणीके वैद्य कौन हो सकते हैं और तृतीय श्रेणीमें किन वैद्योंकी गणना हो सकती है और श्रेणीके अनुसार उनकी वृत्तिके पद कौन कौन उपयुक्त हो सकते हैं—इस विषयमें क्रमशः हम अपना मन्तव्य प्रकाश करते हैं:—

प्रथम श्रेणीमें उन वैद्योंकी गणना हो सकेगी जो लघुकौमुदी, तर्कसंग्रह, रघुवंश, किरात, माघके चार चार सर्ग, श्रुतबोध, अमरकोष, सांख्यकारिका, यजुर्वेदसंहिताके ५ अध्याय तथा कुछ ज्योतिषका भाग पढ़ कर माधवनिदान सटीक, भावप्रकाश, साङ्गधर, चक्रदत्त, रसेन्द्रसारसंग्रह, रसमञ्जरी आदि ग्रन्थोंमें व्युत्पन्न हुए हों। ऐसे पुरुष योग्यचिकित्सक होनेके योग्य हैं और उन्हें "वैद्यसंज्ञा" होनी चाहिये।

द्वितीय श्रेणीमें उन महोदयोंकी गणना होगी जो सिद्धान्तकौमुदी, नवान्हिक महाभाष्य, नैषध, माघसम्पूर्ण, काव्यप्रकाशका कुछ अंश; मुक्तावली न्याय, वैशेषिक और सांख्य तीनों दर्शन, मुहूर्त्तचिन्तामणि सम्पूर्ण, पिङ्गल सूत्र, यजुर्वेद संहिताके २० अध्याय एवं कतिपय ऋग्वेदके सूक्त और सिद्धान्तशिरोमणिका गोलाध्याय मात्र पढ़ कर चरक, सुश्रुत, वाग्भट—ये तीनों ग्रन्थ, मदनपाल, राजनिघण्टु ये दो निघण्टु और रसरत्नसमुच्चय आदि तीन ग्रन्थ रसप्रक्रियाके अध्ययन करके उनमें जो उत्तीर्ण हुए हों, ऐसे योग्य महोदयोंको "राजवैद्य" के पदसे विभूषित करना योग्य होगा।

राजवैद्य इस पदसे विभूषित हो महोदय अष्टाङ्ग आयुर्वेदमें जिसने ३ वर्ष तक उत्तम अनुभव प्राप्त किया हो और वनोपवनोंमें भ्रमण करते हुए वनौषधियोंकी परीक्षा और गुणोंका भी जिसने भली प्रकार अनुभव किया हो, तथा जिसने नवीन नवीन आविष्कारोंको भी किया हो, ऐसा सर्वप्रिय वैद्य "धन्वन्तरि कल्प" या प्राणाभिसर, इस पदसे विभूषित होने योग्य है। ऐसे "धन्वन्तरि" वैद्यके विषयमें हम पूर्व ही निवेदन कर चुके हैं कि उसके वेतनकी सीमा इस समय निर्धारण करना हम उचित नहीं समझते। जिस समय हमारा वैद्य-संसार उन्नतिके उत्तुङ्ग शिखर पर आरूढ़ होकर संसारको अपने अपूर्व चमत्कारोंसे चमत्कृत करेगा तब योग्य पुरुष उक्त पदाभिषिक्त वैद्योंकी वेतन-सीमा आप ही निर्धारित कर लेंगे।

पूर्वकालमें पूर्वोक्त ही प्रकारके वैद्य थे और उन वैद्योंका प्रत्येक राजा, महाराजा एवं धनिकोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनके यहांसे मासिक वेतन, भूसम्पत्ति आदि वृत्तियाँ उनको मिला करती थीं, जिनके प्रमाण चरक, सुश्रुतादि ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। देखिये, चरक विमानस्थानके तीसरे अध्यायसे स्पष्ट विदित है कि भगवान् अग्निवेश कांपिल राजकी ओरसे नियुक्त होकर शिष्योंको वैद्यक पढ़ाते थे। भगवान् सुश्रुताचार्य भी अपनी संहिताके प्रथमाध्यायमें लिखते हैं—"यस्तु कर्मसु निष्णातो धाष्ट्यार्च्छास्त्र वहिष्कृतः। ससत्सु पूजां नाप्नोति वधश्चार्हति राजतः"। अर्थात् राज्यशासनसे और वैद्य-विद्यासे कितना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि जो मनुष्य शास्त्रको बिना पढ़े चिकित्सा करता था उसके लिये राज्यसे बध कर देनेका क़ानून बन गया था। राजसेनाके साथमें भी विषाक्त पृथ्वी, जल, वायु, तृणादिकी परीक्षाओंके निमित्त वैद्योंकी आवश्यकता थी और अब भी है। जैसे आजकल ब्रिटिश राज्यमें, विलायतसे सर्जन-परीक्षा उत्तीर्ण होकर और फौजमें कप्तान आदि उपाधियोंसे भूषित होकर सैनिक व्यवहाराचारोंके साथ चिकित्साका काम करते हैं, वैसे हो पूर्वकालीन नरेशोंके यहाँ भी वैद्यलोग सेनाध्यक्षतामें रहते हुए चिकित्साका काम करते थे तथा उनके समस्त खान-पानादिकी परीक्षा करते थे। जैसा कि

भगवान् सुश्रुतने अपनी संहिताके ३४वें युक्त सेनीयाध्यायमें लिखा है:—

"युक्तसेनस्यनृपतेः परानभि जिगीषतः।
भिषजारक्षणं कार्यं तथा तदुपदेक्ष्यते॥
विजिगीषुः सहामात्यैर्यात्रा युक्तः प्रयत्नतः।
रक्षितव्यो विशेषेण विषादेव नराधिपः॥
पन्थानमुदकंछायां भक्तं यवसमिन्धनं।
दूषयन्त्यरयो यस्माज्जानीयाच्छोधयेत्तथा॥
तस्य लिङ्गं चिकित्साञ्च कल्पस्थाने प्रवक्ष्यते"।

यहाँ तक वैद्योंकी आवश्यकताएं थीं कि भोज्य पदार्थोंकी परीक्षा ही नहीं, वरन् पाककर्त्ता (रसोइया) भी वैद्यों द्वारा परीक्षित होकर नियुक्त किया जाता था। भगवान् सुश्रुताचार्यने अपनी संहितामें लिखा है:—

आप्तान्वितमसङ्कीर्णं शुचिकार्यं महानसम्।
तथासैगुणसम्पन्न मन्नभक्ष्ये सुसंस्कृतम्॥
शुचौ देशे सुसंगुप्तं समुपस्थापयेद्भिषक्।
सिद्धैर्मन्त्रैर्हताविषं सिद्धमन्त्रं निवेदयेत्॥

और पाकशालाका अध्यक्ष भी वैद्य-गुणोंसे युक्त होता था। यथा सुश्रुत कल्पस्थान प्रथमाध्यायमें लिखा है:—

तत्राध्यक्षं नियुञ्जीत प्रायो वैद्यगुणान्वितम्।

इससे भी प्रमाणित होता है कि वैद्योंको राज-समादृत वृत्तियाँ प्राप्त थीं। महर्षि अग्निवेशने तिस्त्रैषणीयाध्यायमें कहा है कि—"प्राणैषणानन्तरं धनैषणामापद्यते कृषि पाशुपाल्य वाणिज्य राजोपसेवादीनि जानि चान्यान्यपि सतामविगर्हितानि कर्माणि तान्यारभेत् कर्त्तुमित्यादि।" और भी चरकाचार्यने सूत्रस्थानके तीसरे अध्यायमें आयुर्वेद द्वारा धर्मार्थ-काम-प्राप्ति बतलाया है। वहाँ पर भी कहा है कि—"सामान्यतो वा धर्मार्थकाम प्रतिगृहार्थं सर्वैः अर्थोपार्ज्जनं अधिकृतमस्ति" इत्यादि प्रमाणोंसे भी वैद्यकी वृत्ति सिद्ध होती है।

√जिस प्रकार आजकल पाश्चात्य चिकित्सकोंके मेडिकल स्कूल, मेडिकल कालेज और मेडिकल युनिवर्सिटियाँ तथा अस्पता-

लादि स्थापित हैं और उनमें पठन-पाठन, चिकित्सा, चीरफाड़ आदि समस्त कार्य होते हैं उसी प्रकार इसके पूर्व समयमें हमारे देशमें भी आयुर्वेद विद्यालय, विश्वविद्यालय और आतुरालय थे और उनमें सुयोग्य वैद्य समस्त काय करते थे। भगवान् सुश्रुताचार्य जी अपनी संहितामें लिखते हैं:—

"अधिगत तन्त्रेणाधिगत तन्त्रार्थेन दृष्टकर्मणा कृतयोग्येन शास्त्रार्थं निगदता राजानुज्ञातेन नीच नखरोमणा शुचिना शुक्लवस्त्र-परिहितेन छत्रवता दण्डहस्तेन सोपानात्केनानुद्धतवेषेण सुमनसा कल्याणाभिव्याहारेणकुहकेन बन्धुभूतेन भूतानां सुसहायवता वैद्येन विशिखा नु प्रवेष्टव्या"।

आयुर्वेद-विद्यालयोंमें सम्पूर्ण अष्टाङ्ग आयुर्वेदशास्त्रको पढ़कर राजाज्ञानुसार आज्ञापत्र प्राप्त करके आतुरालयोंमें (अस्पतालोंमें) चिकित्सकोंको चिकित्सा भली प्रकार देख कर पूर्ण योग्यता प्राप्त करके शुद्ध और स्वच्छ वस्त्र धारण करके नाखून आदि कटाकर स्वच्छ हस्त होकर अपनी सहायतार्थ दूसरा वैद्य साथ लेकर रोगीके आरोग्य करनेके निमित्त शस्त्र कर्मादि किया करते थे। जैसे कि आजकल पाश्चात्य चिकित्सक जब किसी रोगीका अप्रेशन (शस्त्रकर्म) करनेके लिये उद्यत होते हैं तब स्वच्छ वस्त्र पहन कर साबुन आदिसे हाथ साफ़ करके सम्मोहनी औषधि (क्लोरोफार्म नाड़ी और हृदयपरीक्षा) आदि प्रयोगोंके लिये एक दो डाक्टर अपने साथ लेकर कार्य करते हैं। इन वाक्योंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति हमारे आयुर्वेदके आधार पर ही है।

और भी आप देखते होंगे कि जब कोई कष्ट-साध्य रोगी पाश्चात्य चिकित्सकोंके पास जाता है तो वे तुरन्त उसके मालिकसे पूछते हैं कि चीर फाड़में अगर यह रोगी मर जाय तो हम इसके जिम्मेदार नहीं हैं। इस विषयमें भी भगवान् सुश्रुताचार्य अपनी संहिताके सातवें अध्याय अश्मरी-चिकित्सामें लिखते हैं:—

तक्रियायां ध्रुवोमृत्युः क्रियायां संशयोभवेत्।
तस्मादापृच्छ्य कर्त्तव्यमीश्वरं साधुकारिणम्॥

पूर्व समयमें राजा लोग सुयोग्य वैद्योंकी ही चिकित्सा किया करते थे और उनको मासिक वेतन, वृत्ति, पद, दान आदिसे समादृत किया करते थे। इसके बहुत प्रमाण हैं, यथा:—

राजा च सुधनीचैव माण्डलीको वलाधिपः।
उपचार्योर्थ सिद्धिस्यात् वित्त ग्राह्यं भयं न च॥
रोग ग्रस्तेषु चैतेषु चिकित्सा कीर्त्तिकारिणी।

और सुश्रुतमें लिखा है "सराज्ञः कर्त्तुमर्हति" सुश्रुत कल्पस्थान "विषाद्रक्ष्यो नराधिपः" और भी "श्रोत्रिय नृपतिस्त्री०" इत्यादि "धर्मार्थकाम यशांसि प्राप्नोति" इसी प्रकार चरक अध्याय १५ में लिखा है "राजानं राजमात्रमन्यं वा विपुलद्रव्यं सम्भृत सम्भारं वमनं विरेचनं कारयेत्" इससे भी यही सिद्ध हुआ कि राजा या राजाके समान धनिक आदिकोंकी चिकित्सा वैद्यों पर ही आश्रित है।

इतिहाससे भी इस विषयकी सम्यक् प्रकार पुष्टि होती है। रामायण, महाभारतके समयमें भी आयुर्वेद उन्नतिके शिखर पर था। प्रत्येक छोटे बड़े राजाओंके यहाँ एक वैद्य रहता था जिसे राजवैद्य कहते थे। किसी राज्याश्रित होनेसे राजवैद्य कहे जाते थे। राजवैद्य प्रतिदिन अपने राजाको प्रातःकाल देखने जाता था और राजाके स्वास्थ्यका भार उसी पर रहता था। रामायणके देखनेसे जाना जाता है कि महात्मा रामचन्द्र जीका भी एक प्रधान स्वास्थ्य-रक्षक वैद्य था। रामने जब लंकेश्वरके ऊपर चढ़ाई की थी तब सेनाके साथ सुषेण वैद्य था। इसीने लक्ष्मणके वक्षस्थलसे शक्तिको निकाल कर आरोग्य किया था। महाभारतमें भी आयुर्वेदज्ञ सैनिक-चिकित्सोंका वर्णन है। कौरव पाण्डवोंके सग्राममें दुर्योधन बाणोंसे बिंध गया था, तब सैनिक चिकित्सकोंने ही औषधियोंसे सिद्ध किये हुए जलकी द्रोणीमें उसे बिठला कर समस्त शल्योंको मुक्त किया था।

आयुर्वेद सिकन्दरके आने तक उन्नति करता ही रहा। यूनानी इतिहासवेत्ता ऐरियनने सिकन्दरके समयकी भारतकी व्यवस्था लिखते समय चिकित्सा प्रकरणमें एक बात लिखकर आयुर्वेदीय चिकित्सकोंका बहुत गौरव बढ़ाया है। उसने लिखा है कि सिकन्दर

अपनी सेनाके साथ कितने ही अच्छे अच्छे यूनानी हकीमोंको लाया था। पञ्जाबमें सर्प बहुत होते हैं। जब लश्करके आदमियोंको सर्प डसने लगे तब यूनानी हकीमोंने उनको अच्छा करनेमें अपनी अयोग्यता प्रकट की। तब सिकन्दरको हिन्दुस्तानी वैद्य बुलाने पड़े। इन वैद्योंने कितने ही मनुष्योंको अच्छा कर दिया। नकश लिखता है कि यूनानका यह बड़ा भारी बादशाह भारतवर्षीय वैद्यों-की इस विद्यासे आश्चर्यमें डूब गया और कितने ही वैद्योंको अपने लश्करमें आदरपूर्वक नियुक्त कर लिया और अपने यूनानी हकीमों-को हुक्म दे दिया कि वे सर्पदंश और दुस्साध्य रोगोंके विषयमें इन वैद्योंसे पूछ कर काम करें।

✓ तीन सौ वर्षोंसे अधिक हुआ जब काश्मीर-नरेशके यहाँ सिंह-पुर नगरका रहनेवाला नरहरि नामका वैद्य चण्डेश्वरका पुत्र रहता था। जिसने राजनिघण्टु बनाया है। यह सम्पूर्ण राज्यका स्वास्थ्य-रक्षक था।

शोक है जिस विशाल भारतवर्षके राजा, महाराजा, धनिक सभीके यहाँ अध्यात्म विद्याके सदृश वेदके उपाङ्ग आयुर्वेदमें भली-भाँति निष्णात् वैद्योंके हाथमें खाने पीनेकी चीज़ोंका पूरा प्रबन्ध तथा उनके सबकी स्वास्थ्य-रक्षाका भार था। उन्हीं आयुर्वेदज्ञ वैद्योंकी आजकल यह दशा है कि न तो किसी रियासतमें ही वैद्य देख पड़ते हैं न किसी सरकारी तथा म्युनिसिपलिटीके अस्पतालोंमें ही देख पड़ते हैं। यहां तक हम लोग ब्रिटिश राज्यमें अधिकारी एवं त्यक्त हैं कि मामूली संस्थामें भी योग्य वैद्यों तकके सार्टि-फिकेट (प्रतिष्ठापत्र) माने नहीं जाते। उन्हींकी देखादेखी किसी किसी रियासतमें भी वैद्य नहीं हैं। इस समयमें भी वैद्योंकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। जिन वैद्योंको प्राणाचार्य्य तक की उपाधि दीगयी है। महात्मा चरक लिखते हैं:—

> शीलवान् मतिमान् युक्तो द्विजातिः शास्त्रपारगः।
> प्राणिभिर्गुरुवत् पूज्यः प्राणाचार्यः सहिस्मृतः॥
> विद्या समाप्तौ भिषजस्तृतीया जाति रुच्यते।
> अश्नुते वैद्य शब्दं हि न वैद्यः पूर्व्वजन्मना॥

जिन वैद्योंको शास्त्रकारोंने ही खूब रगड़ कर परीक्षाकी कड़ी कसौटीमें कसकर एवं शास्त्रीय नियमोंके बन्धनमें बांधकर

तब वैद्य-पद भागी बनाया है। इन्द्रादि देवताओंने भी वैद्योंकी पूजा की है। वैद्य-पद साधारण नहीं है। वैद्य-पद बड़ा ही महत्व-पूर्ण है। वेद-वाक्योंसे वैद्योंकी स्तुति की गयी है। वैद्य इस पद तक पहुंचे हैं कि देवराज इन्द्रादिकोंके साथ बैठ कर अमृत एवं यज्ञीय भाग लेने तकमें चूके नहीं हैं। वे अजर, अमर, विद्वान् राजादिकोंसे भी पूजे जाते थे। जब देवता तक उन्हें इस गौरवपूर्ण दृष्टिसे देखते थे तब क्या जो मृत्यु एवं जरा व्याधिसे प्रति क्षण पीड़ित रहते हैं उनके माननेके योग्य वैद्य नहीं हैं ?

अब फिर भी अत्यन्त शोकसे कहना पड़ता है कि हमारे वैद्य भाइयोंकी इस समय कैसी हीनावस्था है। इस विषयको अब अधिक न बढ़ाकर विषय पूर्ण करनेके निमित्त उपाय बतानेकी चेष्टा करते हैं। वह यह है कि प्रिय भ्रातृगण! जब तक हम लोग एक सङ्घ शक्ति-सम्पन्न नहीं हो जायँगे तब तक कार्य्यक्षेत्रमें परिणत होनेमें अनेक बाधाएं उपस्थित होंगी। प्रथमतः उपाय यह है कि प्रत्येक नगर, प्रत्येक रियासत, प्रत्येक धनिक एवं सरकारी अस्पताल, म्युनिसिपलिटी आदिमें वैद्य रखनेके लिये आयुर्वेद-महामण्डलकी ओरसे सानुरोध प्रार्थना करके एक एक वैद्य नियुक्त करानेका प्रयत्न किया जाय। उनके लिये उनकी योग्यता-नुकूल मासिक वेतन भी दिया जाय। दूसरे प्रत्येक नगरमें, आयुर्वेद-विद्या-पीठकी शाखाएं खोल कर वहां योग्य वैद्य-अध्यापक सवैतनिक नियुक्त किये जायं। प्रत्येक रियासतोंमें भी, यदि प्रबन्ध हो सके तो, एक एक आयुर्वैदिक पाठशाला एवं आतुरालय (अस्पताल) खोले जायँ और वहां भी योग्य वैद्य सवैतनिक नियुक्त किये जायं और जहां केवल राज्य-शक्तिकी ओरसे आतुरालय खोले जानेकी सम्भावना न हो, वहां राजा-प्रजा दोनोंकी ही सहायतासे अथवा केवल प्रजाकी सहायतासे वा सर्वसाधारणके चन्देसे नगर, क़सबा, ग्रामादिमें आतुरालय खोल कर उनमें वैद्य नियुक्त किये जायँ और वहां उनकी योग्यतानुकूल उनकी वृत्तियों-के लिये पर्य्याप्त प्रबन्ध किया जाय। इसके सिवाय एक ऐसी सङ्घशक्ति (कम्पनी) हो जहां सुयोग्य वैद्यों द्वारा समस्त आयुर्वेदीय औषधियां सच्ची शास्त्रोक्त विधिसे बनायी जावें और उन औष-

धियोंके विक्रयार्थ भारतके प्रधान प्रधान नगरोंमें उस कार्यालयकी शाखाएं स्थापित की जायँ; एवं छोटे छोटे नगरों तथा ग्रामोंमें उन शाखाओंकी प्रशाखाएं स्थापित की जायँ। इसी प्रकार वाह्याभ्यन्तरिक शारीर विषयक सूक्ष्म ज्ञान तथा पदार्थ-विज्ञान प्रभृति आयुर्वेद सम्बन्धीय विज्ञानका अधिक खोज करनेवाले वैद्योंको उनका उत्साह बढ़ानेके निमित्त उन महोदयोंके लिये उच्च वृत्तियां नियत की जाय और उनको उनकी योग्यतानुकूल वैद्यभूषण, वैद्यरत्न, वैद्य-पञ्चानन आदि उपाधियोंसे विभूषित किया जाय।

यह सब पूर्ण तभी हो सकता है कि जब राज-वृत्ति-प्राप्त वैद्य हों एवं राजा प्रजा मिलकर सहायता प्रदान करें। इन्हीं उपायोंसे आयुर्वेदका पुनरुद्धार होना सम्भव है।

आयुर्वेदका रसायनशास्त्र।

[ले०—रसायनशास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य वैश्य रसायनशाला काशी।]

ब्राह्मी चिकित्सा और शैवी चिकित्साके विभागसे आयुर्वेद द्विधा विभक्त है। "ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिरधिजगे" इत्यादि सुश्रुत प्रमाणसे, "ब्रह्मणादि यथा प्रोक्त आयुर्वेदं प्रजापतिः जग्राह निखिलेनादौ" इत्यादि चरक प्रमाणसे जिसके प्रधानाचार्य ब्रह्मा हैं, उसको ब्राह्मी चिकित्सा समझना चाहिये। जैसे चरक सुश्रुतादि शास्त्र ब्राह्मी चिकित्साके हैं।

जिसके शिव जी महाराज प्रधानाचार्य हैं, उसको शैवी-चिकित्सा समझना चाहिये। जैसे "स जयति दैन्यगदाकुलमखिलमिदं पश्यतो जगद्दयस्य। हृदयस्यैव गलित्वा जाताद्रसरूपिणी करुणा" रसहृदयकार गोविन्द भिक्षु कहते हैं कि जगत्को दारिद्र्य और व्याधियोंसे पीड़ित देख कर जिस शङ्कर देवके हृदयमें करुणा उत्पन्न होकर पारद रूपसे बह कर जगत्में प्रादुर्भूत हुई, उस परमात्मा शङ्करको हम नमस्कार करते हैं। अर्थात् पारद प्रधान रसा-

यनशास्त्रसे सुवर्णादि सिद्धि द्वारा जगत्का दारिद्र्य दूर होता है और "ज्वरांकुश" "श्वासकुठार" प्रभृति रसोंके द्वारा व्याधियोंका भी निर्मूलन होता है। इसलिये जिसमें पारद संस्कार चन्द्रोदयादि-विधि, अष्टधातुओंकी भस्म, गन्धक, संखिया, हरिताल, मनःशिला आदिके तेल, भस्मकी विधि वर्णन की गयी है, उसको शैवी-चिकित्सा जानना चाहिये। इस प्रकार आयुर्वेदकी दो प्रकार व्यवस्था हुई।

अब रहा अपना मुख्य विषय रसायनशास्त्रका, उसकी भी प्रसिद्धि अनेक प्रकारसे देखते हैं। लोकमें तो जिसमें सुवर्ण चाँदी बनाना लिखा हो उसको रसायनशास्त्र कहते हैं, जैसे अमुक साधु रसायनी है अर्थात् सोना चांदी बनाना जानता है १

चरकादि ब्राह्मी चिकित्साके ग्रन्थोंमें जो रसायनाधिकार है, उससे ज्ञात होता है कि तन्दुरुस्त मनुष्यके रस-रक्तादिसे लेकर सर्वधातुओंका सार ओजसको पुष्ट करे और दीर्घ आयुःस्मृतिमेधा आरोग्यादि जिससे लाभ हो उसको रसायन कहते हैं। जैसा चरकके चिकित्सास्थान में लिखा है कि 'स्वस्थस्योजस्करं यत्तु वृष्यं तद्रसायनम्। दीर्घमायुः स्मृतिं मेधां मारोग्यं तरुणं वयः। प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम्। वाक्सिद्धिं प्राणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्"। २

रहे केमिस्ट्रीके ज्ञाता पाश्चात्य विद्वान्, वे लोग पदार्थविज्ञानको ही रसायनशास्त्र कहते हैं। ३

परन्तु आयुर्वेदका रसायनशास्त्र वही समझा जा सकता है जिसको मैं शैवीचिकित्सा शब्दसे उपपादन कर चुका हूँ। ४।

यह चतुर्थ शैवीचिकित्साका पर्य्याय जो रसायनशास्त्र है इसकी कुक्षिमें उपर्युक्त तीनों रसायनशास्त्र आ जाते हैं देखिये:—

"व्यालस्यगरले सूतं मर्दयेत् सप्तवासरान्। शम्भुनाऽलंकृते यन्त्रे तन्मध्ये तद्रसं क्षिपेत्। वह्निं प्रज्वालयेद्गाढं दद्यादूर्ध्वं हिमं जलम्। यामद्वादशकं चैव सुसिद्धोजायते रसः। ताम्रे गुञ्जार्धकं देयं गुञ्जैकं पर्वतेष्वपि। देहे लेहे भवेत् सिद्धिः कामयेत्कामिनी-शतम्। तिलमात्रं प्रदातव्यं सर्वरोगान् नियच्छति" इस प्रयोगमें

पारदकी सिद्धि बतलायी है। जिससे तामेका सुवर्ण बनाना कहा है और एक तिल मात्रके सेवन करनेसे सैकड़ों स्त्रियोंको भोगनेकी सामर्थ्य और देह सिद्धि कही है। आजकल ऐसे प्रयोग वैद्योंको अनुभूत नहीं है; इसीलिये चिकित्सामें भी यथोक्त प्रभाव नहीं दिखा सकते; क्योंकि ज्ञानी लोगोंका कहना है कि "माया रँगे सो काया रँगे"। ऐसा सिद्ध हो तो अपने पुरुषार्थका बेशक अन्धेर हो; आयुर्वेदके रसायनशास्त्रमें सब कुछ है केवल परिश्रमकी त्रुटि है। इत्यादि लिखनेका यह तात्पर्य है कि लौकिक मनुष्य सुवर्णादि सिद्धिको रसायन समझते हैं। वह भी आयुर्वेदके रसायनशास्त्रका एक अङ्ग है। ब्राह्मीचिकित्सावाले भी जो "स्वस्थस्यौजस्करं यत्तु" इत्यादि रसायनका अर्थ समझते हैं, वह भी आयुर्वेदके रसायनशास्त्रकी कुक्षिमें ही पड़ा हुआ है। जैसा अभी कह चुके हैं कि "सर्वरोगान् नियच्छति" सुवर्णादि सिद्धिके प्रयोग तो विरले मनुष्योंको ही अनुभूत होते हैं; परन्तु भयङ्कर रोग चिकित्सामें तो अभी तक आयुर्वेदके रसायनशास्त्रका सामना किसी चिकित्साकाण्डने नहीं किया है। ब्राह्मीचिकित्सावाले और डाक्टर, यूनानी कोई क्यों न हो। प्रत्युत इसका अनुकरण सबको करना पड़ता है। वाग्भटाचार्यने सब कुछ लिखा परन्तु अन्तमें उसने भी व्यवस्था दे डाली कि "युगप्रभावाद् यदि चौषधीनां क्रियासुपेक्ष्याणि रसायनानि"। महर्षियोंने तो जब रसायनशास्त्र लिखनेको कलम उठायी थी, उसी दिन लिख डाला था कि "साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्ववेदिना। असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठउच्यते"। आजकल भी सैकड़ों वैद्य इस भारतवर्षको अलंकृत कर रहे हैं, जो रसायनशास्त्रके हज़ारों रसोंका अनुभव करके व्याधि-व्याधितोंको अवलम्बन दे रहे हैं।

सुवर्ण सिद्धि "भूचरीगुटिका, खेचरीगुटिका" की तो बात छोड़ दीजिये। उनका अनुभव तो जब शिव जी कृपा करेंगे तब होगा। परन्तु यह:—

हिंगुलोत्थरसं भागं षड्भागं शुद्धगन्धकम्। खल्वमध्ये विनिक्षिप्य कुमारी रसमर्दितम्। काचकूप्यां विनिक्षिप्य वालुकायन्त्रगंपचेत्। पाचयेत्सप्तरात्राणि सिन्दूरं भवति ध्रुवम्। वल्ल-

मात्रं प्रयुञ्जीत मधुनालेहयेत् परम्। स्तम्भनं दण्डवृद्धिं च वीर्य-वृद्धिं बलान्वितम्। करोतितेजः पुष्टिं च महामत्तगजेन्द्रवत्। षण्ढत्वं वान्ध्यरोगं च नाशयेत्सर्वरोगजित्" यह षड्गुण गन्धक जारण-का प्रयोग है। इसको कोई वैद्य बना कर अनुभव कर ले; हैजा, सन्निपातादि भारी भारी रोगोंमें इसका प्रभाव हमने प्रत्यक्ष किया है।

कोई समय आयुर्वेद ब्राह्मीचिकित्साका भी वह था कि जिसके संरक्षक भगवान् अश्विनीकुमार जैसे पृथ्वीके स्तम्भीभूत इस देश-को अलंकृत करते थे।

"यज्ञस्य च शिरश्छिन्न मश्विभ्यां सन्धितं पुरा।
पातिता दशनः पूष्णो भगस्य च विलोचने॥
राजयक्ष्मार्दितश्चन्द्रस्ताभ्यां मेव चिकित्सितः।
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन्विकृतिं गतः॥
वीर्यवर्णबलोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा।
एभिश्चान्यैश्च विविधैः कर्मभिर्भिषगुत्तमौ॥
बभूव तुर्भृशं पूज्या विन्द्रादीनां महात्मनाम्।
सौत्रामण्यां च भगवानऽश्विभ्यां सहमोदते॥
अश्विभ्यां सहितः सोमं प्रायः पिबति वासवः।
अश्विभ्यां कल्पितो भागो यज्ञेषु च महर्षिभिः॥
अश्विनावग्निरिन्द्रश्च वेदेषु सुतरांस्तुताः।
वैद्यावित्यश्विनौ देवौ पूज्येते विबुधैरपि॥
अजरै रमरै नित्यं सुखितैरेव साद्गलैः।"

इत्यादि प्रभाव शास्त्रोंमें लिखे हैं उस ब्राह्मी चिकित्साके एक भाग शल्यतन्त्रका अनुभव करके डाक्टर लोग लाखों मनुष्योंके प्राण बचा रहे हैं। वह ब्राह्मी-चिकित्सा महार्णव भी जिस रसा-यनशास्त्रका सामना नहीं कर सकता तो अन्य चिकित्साकाण्डकी बात ही क्या है? इतने गौरवका मुख्य कारण यह है कि ब्राह्मी-चिकित्सा तो वनस्पतियोंके आधार पर निर्भर है; किन्तु शैवी-चिकित्सा अर्थात् रसायनशास्त्र सर्व वनस्पतियोंका गुरु जो पारद है उस पर निर्भर है। जैसाः—

"मृदः कोटिगुणं स्वर्णं स्वर्णात्कोटिगुणोमणिः
मणेः कोटिगुणो बाणो बाणात्कोटिगुणो रसः
रसात्परतरः किञ्चिन्न भूतो न भविष्यति।

अर्थात् वनस्पति और सुवर्णको छोड़ कर सीसा, रांगा, तांबा, चांदी सबकी मिट्टीमें गणना है। क्योंकि बिना औषध-के संयोगके अत्यन्त अग्नि लगाया जाय तो चांदी पर्यन्त सर्व-धातुओंकी भस्म हो सकती है और सुवर्णमें तो हजार मन लकड़ीकी भी आग क्यों न लगायी जाय एक रत्ती सुवर्ण भी बिना पारदादिके संयोग भस्मी भूत नहीं हो सकता। इसीलिये नैया-यिकोंने "अत्यन्तानलसंयोगोपि अनुच्छिद्यमान द्रवत्वाधिकरणत्वात्" इस युक्तिसे सुवर्णको तैजस सिद्ध किया है। तात्पर्य यह हुआ कि कुल मिट्टीसे (चांदी पर्यन्त धातु तथा वनस्पति) कोटि गुण सुवर्ण सेवनसे होता है। सुवर्णसे भी कोटि गुण मणि (हीरा, पन्ना, नीलम, लाल, पुखराज) भस्म सेवनसे होता है। मणिसे भी कोटि गुण बाण (इन्द्रका बाण बिजलीका लोहा) भस्म सेवनसे होता है। चातुर्मासमें गोबरको माँदके ऊपर कांसीकी थाली रख देते हैं उस थालीमें बिजली गिरती है सो गोबरमें शीतल होती हुई पृथ्वी-को तोड़ कर दश पाँच हाथ नीचे तक बिजलीका लोहा पहुंच जाता है उसको खोदकर पृथ्वीसे निकालते हैं; ऐसी प्रसिद्धि है। बिजली-के लोहसे भी कोटिगुण पारद भस्म सेवनसे होता है और पारदसे बढ़ कर आजतक कोई चीज़ हुई न होगी।

अब रहा तीसरा पदार्थ विज्ञानापर पर्याय रसायनशास्त्र उसका भी बोध "रसायनशास्त्र" इसी शब्दसे हो जाता है। क्योंकि (रसः पारदएवाऽयनम् आश्रयोयत्रबोधितः सर्वासां काष्ठौषधीनां नागादिधातूनां च तच्छास्त्रं रसायनशास्त्रम्) इस व्युत्पत्यात्मक समाससे, और:—

काष्ठौषध्यो नागे, नागोवङ्गे,ऽथवङ्गमपिशुल्वे,
शुल्वं तारे, तारं कनके, कनकञ्च लीयते सूते,
अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः

तद्वत् कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः" इस व्यास (विस्तार) से आयुर्वेदका रसायनशास्त्र सब जगत्का पारदमें लय कह रहा है। तात्पर्य यह है कि "जन्माद्यऽस्ययतः" इस वेदान्त सिद्धान्तसे ब्रह्मसे सृष्टि उत्पन्न होकर ब्रह्ममें ही लीन हो जाती है; उसी प्रकार "रसोवैसः" यह श्रुति भी पारदको ब्रह्म बतला रही है।

अर्थात् जो निराकार रूपमें ब्रह्म स्थित है वह लोकोंके अनुग्रहार्थ पारद रूपमें साकार है। जैसा गोविन्दभिक्षुने कहा है कि "सजयनि-दैन्यगदाकुलमखिलमिदं पश्यतो जगद्‌यस्य हृदयस्थैव गलित्वा जाता रसरूपिणी करुणा"।

ब्रह्ममें लयका यह क्रम है कि स्थूल वस्तु सूक्ष्ममें लीन होती है जैसे पृथ्वी जलमें लीन होती है, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश आत्मामें, आत्मा ब्रह्ममें लीन होता है। इस क्रममें स्थूल वस्तुका ही सूक्ष्ममें लय कहा है। पृथ्वीसे जल सूक्ष्म है; क्योंकि पृथ्वी पर जैसे मनुष्य डोल सकते हैं, मकान बनवा सकते हैं, उस प्रकार जल पर कार्य नहीं हो सकता। जलसे सूक्ष्म अग्नि है; क्योंकि चूल्हे पर बटलोईमें जल गरम करते हैं तब बट-लोईके जिन सूक्ष्म छिद्रों द्वारा अग्निके परमाणु प्रविष्ट होकर जल-को गरम कर देते हैं उन छिद्रोंसे जल नहीं निकल सकता। इससे मालूम हुआ कि जलसे अग्नि सूक्ष्म है। अग्निसे वायु सूक्ष्म है; क्योंकि अग्निका तो नेत्रसे भी साक्षात्कार होता है, वायुका तो वृक्षादि कम्पनसे, विलक्षण स्पर्शसे अनुमान होता है। लौकिक मनुष्य भी कहते हैं कि देखो! वृक्षोंके पत्र हिलते हैं इससे अनुमान है कि वायु चल रहा है। वायुसे भी आकाश सूक्ष्म है; क्योंकि वायुका तो त्वगिन्द्रियसे भी अनुभव कर सकते हैं; आकाशका तो सो भी नहीं। केवल अवकाशदानसे अनुमान होता है। अती-न्द्रिय वस्तुमें ही साम्प्रदायिकाचार्योंके खण्डन मण्डन हुआ करते हैं। चारवाक कहते हैं कि हम आकाशको तो मानते हैं; परन्तु आत्माको नहीं मानते। इसलिये जो लोग आकाशको भी नहीं मानते उनसे हम सूक्ष्मदर्शी हैं। जैन बौद्धोंका कहना है कि चार-वाक "अहंसुखी अहंदुखी" इत्यादि प्रतीतिसिद्ध आत्माको भी नहीं मानता; इसलिये हमारी अपेक्षा चारवाक स्थूलदर्शी हैं। नैया-यिक वेदान्ती कहते हैं कि हम लोग ब्रह्म तक पहुंचे हैं जिसकी कृपा-कटाक्षसे संसार चक्र यथावत् चल रहा है; वहां तक जैन बौद्धोंका गम भी नहीं है; इसलिये हमसे ये लोग भी पृथुदर्शी हैं। इत्यादि शास्त्रार्थ सुने होंगे। परन्तु यह किसी साम्प्रदायिकने नहीं कहा कि हम पृथ्वीको नहीं मानते। यदि कोई ऐसा कह बैठे तो एक

पाषाण उठाकर उसके मस्तक पर मारा जाय। जब वह रोने लगे तब कहा जाय कि तुम तो पृथ्वीको मानते ही नहीं हो फिर क्यों रोते हो? आकाशसे भी आत्मा सूक्ष्म है; क्योंकि आकाशका यह तो भान होता है कि यह पोल; जहां हम बैठे हैं; आत्माका तो सो भी नहीं। आत्मासे भी ब्रह्म सूक्ष्म है; क्योंकि आत्माका तो "अहंसुखी अहंदुःखी" इत्यादि प्रत्ययसे अनुभव होता है। ब्रह्मका तो सो भी नहीं। यह तो ब्रह्ममें सृष्टि लयका क्रम हुआ। अब सुनिये! पारदमें लयक्रम:—

काष्ठौषधि नाग (सीसे) में लीन होती हैं; क्योंकि काष्ठौषधियोंके परमाणु स्थूल हैं। थोड़ा अग्नि लगानेसे ही भस्मी भूत हो जाते हैं। नागके ऐसे नहीं हैं। दूसरे एक सेर नागकी डली तराजूके पलरेके बीचमें ही आ जायगी। काष्ठौषधि एक सेरसे कहीं सारा पलरा भर सकेगा, इसलिये भी नागसे काष्ठौषधि स्थूल ही ठहरी। तब तो काष्ठौषधियोंका नागमें लय होना युक्ति युक्त है। काष्ठौषधियोंका नागमें यही लय होना है कि जितनी काष्ठौषधियोंका नागमें संस्कार किया जायगा, सबके गुणको अपने महागुणमें लीन कर लेगा। किसी वैद्यने किसी रसायनशास्त्रमें नहीं देखा होगा कि अमुक काष्ठौषधियोंका अमुक योग बनाकर रोगीको दिया उसका अनुपान नाग भस्म रखा गया। जो कमजोर होता है वह अनुपान होता है। काष्ठौषधियोंसे नाग कमजोर नहीं है। किन्तु सार्वजनिक ऐसा अनुभव तो है कि नागभस्मको सुदर्शन चूर्णके अनुपानसे सेवन करना। जब काष्ठौषधियोंसे बीमारी नहीं जाती है तब ही तो नागादि भस्म देकर उन्हीं काष्ठौषधियोंको अनुपान-स्थानमें रखते हैं। अनुपानका अर्थ सहायक है। जैसे राजाकी फ़ौज सहायक है। अर्थात् राजामें उतनी बुद्धि अकेलेमें है जितनी सब फ़ौजमें नहीं है। यदि राजा कमजोर समझा जाय और फौज ज़बरदस्त समझी जाय तो फौज ही राज्य क्यों नहीं करे? राजा इतना ज़बरदस्त है कि सर्व मन्त्री, दरबारी, फौज, प्रजा सबकी बुद्धिको अपनेमें लीन करके राज्य करता है। इसी युक्तिसे नाग इतना ज़बरदस्त है कि सर्व काष्ठौषधियोंकी गुणसत्ताको अपनेमें लीन करके रोगनिवृत्ति लक्षण कार्य करता है।

निखिल-भारतवर्षीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन

आयुर्वेदीय प्रदर्शनी कलकत्ता।

(सं० १९७१ वै०)

निवेदन है कि इस वर्ष यहां पर षष्ठ वैद्यसम्मेलनके साथ आयुर्वेदीय प्रदर्शन होगा। आप इस देश-हितकारी कार्य्यके लाभ और महत्वको भली प्रकार जानते हैं, इस प्रकार प्रदर्शनसे उन्नतिकारी परिवर्तन और सुफल सम्भावनाका मर्म भी अवश्य समझते हैं। अतएव प्रार्थना है कि आप इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनानेका प्रयत्न करें और निम्नलिखित वस्तुओंमेंसे जो जो आप भेज सकें उन्हें भेजनेकी कृपा करें।

तालिका।

(१) हरे या सूखे वनस्पति कन्दमूल, फल, पुष्पादि। (२) उत्तम रासायनिक सिद्धौषध और पार्थिव भेषज (यथा कंकुष्ठ, खर्पर आदि)। (३) जान्तव भेषज (यथा कस्तूरी, गोरोचना आदि)। (४) शारीर अस्थिपंजर तथा अङ्गप्रत्यङ्गोंके चित्रादि। (५) प्राचीन तथा नूतन यन्त्र शस्त्रादि। (६) मुद्रित अमुद्रित वैद्यक ग्रन्थ। (७) अनूभूत प्रयोगानुसार आयुर्वेदोक्त दवाइयां।

नोट—ये चीज़ें १५ दिसम्बर १९१४, तक आ जानी चाहिये।

नियमावली।

१—इस प्रदर्शनीके विभाग निम्न लिखित होंगे—(१) पुस्तक विभाग (२) शारीर विभाग (३) वनस्पति विभाग (४) रसौषध विभाग (५) यन्त्र शस्त्र विभाग (६) जान्तव भेषज विभाग (७) स्वकल्पित अनुभूत औषध विभाग।

२—इस प्रदर्शनीके कुल कार्योंकी मीमांसा एक व्यवस्थासमिति द्वारा होगी।

३—प्रदर्शनमें आनेवाली कुल वस्तुओंकी सर्व प्रकार रक्षाका भार और उत्तरदायित्व यथासाध्य व्यवस्थासमितिके जिम्मे होगा।

४—जो महाशय प्रदर्शनार्थ वस्तु भेजेंगे उनको सुपरिण्टेण्डेण्ट—प्रदर्शनीके हस्ताक्षर युक्त, उनकी वस्तुओंकी तफसीलवार एक रसीद दी जायगी और समय समाप्त होनेपर सर्व बहुमूल्य और दुर्लभ वस्तुएं सुरक्षित लौटा दी जायंगी और भेजनेवालेके हस्ताक्षर रजिस्टरमें करा लिये जायंगे या पोस्टकी रसीद ली जायगी। परन्तु साधारण सस्ती चीज़ें तथा हरी औषधियां नहीं लौटायी जायँगी।

५—सर्व आयुर्वेदानुरागियोंको पहले प्रदर्शनीमें भेजने योग्य वस्तुओंकी एक सूची भेजनी चाहिये। उसमेंसे पसन्द करके जो जो वस्तुएं मांगी जायँगी, उनका रेल किराया प्रदर्शनीकी कमेटी देगी। यदि कोई महाशय स्वयं देंगे तो धन्यवादपत्र दिया जायगा।

६—सर्वप्रकार वस्तुओंकी जिम्मेवारी उसी अवस्थाकी ली जायगी जिस अवस्थामें वे प्रदर्शनी-कार्यालयमें पहुँचेंगी।

७—प्रदर्शनमें भेजी हुई जिन वस्तुओंको भेजनेवाले बेचना भी चाहते हों, कृपया उन पर उचित मूल्य भी लिख दें। बिकने पर मूल्य भेज दिया जायगा।

८—दुष्प्राप्य हरी सूखी वनस्पतियोंके तथा अन्यान्य चीजोंके साथ उनके भाषानाम, संस्कृतनाम, प्राप्तिस्थान और समान्य उपयोग भी लिख देना आवश्यक है। संस्कृतनाम विदित या प्रसिद्ध न हो तो भाषानाम ही लिखिये।

९—जो महाशय अपनी शास्त्रीय या कल्पित अनुभूत औषध तथा प्रदर्शन सम्बन्धी अन्य वस्तु प्रदर्शनके व्यवस्थापककी पसन्दगीके अतिरिक्त भेजेंगे उसके रखनेकी फीस कीमत पर एक आना रुपया उनसे ली जायगी; और यदि प्रदर्शन द्वारा बिकवाना चाहेंगे तो २५) सैकड़ा कमीशन लिया जायगा। ऐसे स्थलमें चीजोंकी सजाईके लिये आलमारी आदिका प्रबन्ध प्रेरकको करना होगा।

१०—मार्गमें या प्रदर्शनमें भी किसी दैव दुर्घटनासे किसी वस्तुकी हानि आदिकी दायी कमेटी न होगी।

११—मार्गमें या प्रदर्शनीकी व्यवस्थासे जो महाशय अपने नोटिस बंटावेंगे उन्हें प्रति विज्ञापनकी सहस्र प्रति बंटवानेके लिये २) देना होगा।

१२—प्रदर्शनीमें विक्रेय औषध आदिका स्थान या अतिरिक्त दूकान रिजर्व कराना, रिपोर्टमें विज्ञापन छपाना, सब प्रकार वस्तु पहुँचाना आदि कार्य १५ दिसम्बर तक हो सकेंगे।

१३—जो महानुभावगण परिश्रम स्वीकार कर प्रदर्शनार्थ वस्तुएं भेजेंगे उन्हें कमेटी द्वारा यथायोग्य निर्धार करके मैडेल (पदक) या मानपत्र दिये जायँगे।

१४—प्रदर्शनीकी वस्तुएं भेजना एवं पत्र व्यवहारादि करना "सुपरिंटेण्डेण्ट, आयुर्वेदीय प्रदर्शनी, न० १८।१ लोवरचितपुररोड कलकत्ता"—इस पतेसे होना उचित है।

नोट—विस्फोटक (भकसे उड़नेवाली) कोई वस्तु प्रदर्शनीमें न रखी जा सकेगी।

आयुर्वेदमहामण्डलके लिये लाला राजकिशोरने त्रिवेणी प्रेस दारागञ्ज प्रयागमें छापकर प्रकाशित किया।